पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार बॉर्डर के निकट हरैया गांव में 1979 में जन्मे इमरान सिद्दीकी की प्रारंभिक शिक्षा अपने गांव में ही हुई. 1997 में वे इंजीनियरिंग की तैयारी के लिए अलीगढ़ गए. बचपन से ही उनकी साहित्य और दर्शन में गहरी रुचि रही है.

आई.आई.टी. की प्रवेश परीक्षा की तैयारी के उपरांत वे सामाजिक अध्ययन और साहित्य की ओर मुड़े और बचपन की रुचियों को विकसित करने का अवसर मिला. 1999 में वे दिल्ली गए जहां थोड़े समय रंगमंच से जुड़े रहे. अक्टूबर 2002 में मुम्बई आए और मार्च 2003 में सहायक निर्देशक के रूप में टेलीविजन सोप से जुड़े. सम्प्रति वे टेलीविजन, रंगमंच और लेखन में सक्रिय हैं.

- इमरान सिद्दीक़ी

authorimran@gmail.com

संभोग से सर्वनाश की ओर

(a philosophical fiction)

इमरान सिद्दीक़ी

इंडिया बुक्स कम्पनी

India Books Company

नई दिल्ली (भारत)

ISBN : 978-93-5067-827-5
@ : लेखक
India Books Company
डी-2, प्रथम तल, बाल उद्यान रोड,
उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 (भारत)
फोन नं. : 011-64527190
E-mail : indiabookscompany44@gmail.com
प्रथम संस्करण : 2013
मूल्य : ₹ 75.00
टाइप सेटिंग : गुप्ता कम्युनिकेशन
शाहदरा, दिल्ली-110032
आवरण : गुप्ता कम्युनिकेशन
मुद्रक : निधि इंटरप्राईजेज
दिलशाद गार्डन, दिल्ली

SAMBHOG SE SARVANASH KI OAR... by Imran Siddiqui
Publishing by : *India Books Company,* Delhi (India)

समर्पण

समर्पित है उन तमाम भारतीय और यूरोपीय
लोगों को जो क्षणिक भावावेश में
शब्द-सम्मोहन के वशीभूत ओशो के
शरण में गये और कुछ समय पश्चात् जब
उन्हें यथार्थ-बोध हुआ तब उनका मोहभंग
हो गया. तब तक उनका परिवार बिखर कर छितर-
बितर हो गया था और उनके जीवन का
बहुमूल्य समय बरबाद हो गया. मेरे निकट
वो सभी लोग अपने समाज के बहादुर लोग हैं.
जब जागे तभी सवेरा इसलिए आप सबको निराश
नहीं होना है.
मेरी शुभ कामनायें, मैं आप सबके उज्जवल भविष्य
की परमात्मा से कामना करता हूं.

अपील

मैं ओशो को एक लोकप्रिय चिंतक के रूप में जानता हूं. बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ओशो अपनी जादुई बातों से दुनिया भर में बेहद लोकप्रिय हुआ.

कॉलेज के दिनों में मेरे कई दोस्त ओशो को घंटों पढ़ते रहते थे. मेरे मन में भी ओशो को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई. अतः मैंने उसे पढ़ना शुरू किया.

ओशो का भोग-संभोग सम्मत विचार, मनमोहक हैं. निःसंदेह वह एक महान लॉजिकल ब्रेन रखता था. पर गूढ़ और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया तो पता चला कि ओशो की बातें सत्य से, यथार्थ से कोसों दूर हैं.

हर दिलचस्प बात, सत्य हो, यह ज़रूरी नहीं.

वर्षों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के पश्चात मैंने ओशो के विचारों के तर्कसंगत विरोध का निर्णय किया. अपने विरोध को मैं ''संभोग से सर्वनाश की ओर'' शीर्षक से काउंटर बुक अर्थात् 'विरुद्ध पुस्तक' के रूप में आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूं.

ओशो के पब्लिक स्पीचेज का एक संग्रह (कॅलेक्शन)- ''संभोग से समाधि की ओर'' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ जो उसके दर्शन की बहुचर्चित पुस्तक है.

मेरी यह पुस्तक ओशो की इसी बहुचर्चित पुस्तक का तर्कसंगत विरोध है.

यह पुस्तक विचारों का विरोध है, दर्शन का विरोध है, न कि कोई व्यक्तिगत विरोध.

जनवरी, 2013

authorimran@gmail.com

- इमरान सिद्दीक़ी

संभोग से सर्वनाश की ओर

(a philosophical fiction)

1

शब्द-सम्मोहन में अथाह प्रभुत्व रखने वाला ओशो अपने एक भाषण में कहता है- ''....काम की ऊर्जा ही, सेक्स एनर्जी ही, अंततः प्रेम में परिवर्तित होती है और रूपांतरित होती है....''

संपूर्ण मानव जाति (होल ह्यूमन रेस) विभिन्न संस्कृतियों व धर्मों के पूर्वाग्रह से ग्रसित है, बीमार है. रोग-ग्रसित मानवता के सामने ओशो ने उपरोक्त कथन से प्रेम की व्याख्या की. पूरी मानवता ओशो को दुःखी और बीमार नज़र आयी क्योंकि वह किसी भी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं था.

अतः मनुष्य जीवन (ह्यूमन लाइफ़) की त्रासदी का यथार्थ वह जान गया.

ओशो के पूर्वाग्रह वाली बात पर मेरे मस्तिष्क में एक सवाल उठता है- सृष्टि का प्रथम मानव चाहे वो जो भी रहा हो, डार्विन के सिद्धांत के अनुसार बंदर से परिवर्तित हुआ हो या परमात्मा ने सीधे (डायरेक्ट) उसे धरती पर भेजा हो, वो तो किसी संस्कृति या धर्म से नहीं था! वह तो पूर्वाग्रहों से मुक्त था!! फिर ऐसे में तो उसे ओशो जैसा होना चाहिए था!!! पर वो ऐसा नहीं था. अगर वो ओशो जैसा होता तो संस्कृतियों और धर्मों का जन्म ही नहीं हो पाता और धरती पर सिर्फ़ ओशो संस्थाएं (कम्यून्स) होतीं!

जब प्रथम मानव का मन सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त था, एकदम कोरा था तो वह 'रजनीश' क्यों नहीं था? यहां तो माननीय रजनीश के मूलभूत सिद्धांत अर्थात् पूर्वाग्रह से मुक्ति की बदौलत सृष्टि की रचना ही एक बहुत बड़े प्रश्न के घेरे में आ गयी. परमात्मा से प्रथम मानव का चरित्र-निर्धारण ही गलत हो गया, क्योंकि प्रथम मानव से अनेक संस्कृतियां व धर्म फूट पड़े. अब मैं ओशो को सच्चा और परमात्मा को झूठा तो कह नहीं सकता. हां, यह बात निश्चित है कि ओशो में एक ऐसी नकारात्मक (निगेटिव) मनोवृत्ति थी जिसके कारण उसे सारी दुनिया बीमार नज़र आती थी. अब ज़ाहिर है कि ऐसे मनोविज्ञान का व्यक्ति जब बीमारों का इलाज करेगा तो वो यही बता सकता है कि म्यूजिक ऑन करो और पागलों की तरह नाचते रहो, तुम्हें आध्यात्मिक अनुभूति होगी, आत्म-दर्शन की संभावनाएं उत्पन्न होंगी, प्रेम का द्वार खुलेगा, नाचते रहो, झूमते रहो और ढूंढते रहो स्वयं में स्वयं को. लगे रहो... उन्मुक्त नृत्य के उन्माद में आनंदमय हो जाओ. उन्माद में आनंद की झलक है. उन्माद से तुम्हारे अंदर और अधिक होश में रहने की संभावनाएं फूटेंगी. दरअसल, ऐसे मनोविज्ञान में उत्कृष्टतम संभावनाओं की उद्घोषणा तो जोरों से होती है, पर चूंकि इस मनोविज्ञान का आधार मात्र भ्रामक तर्क हैं इसलिए संभावनाएं कभी घटित नहीं हो पातीं. ऊर्जा जलाते (एनर्जी बर्न करते) रहिए, प्रकृति के नियमानुसार थोड़ा स्वास्थ्य-लाभ ज़रूर होगा. ऐसा मनोविज्ञान रखने वाला व्यक्ति अति आत्मविश्वासी (ओवर कॉन्फ़ीडेंट) होता है, जो कभी प्रकृति के मनोविज्ञान को समझ ही नहीं पाता. कोरे लॉजिक्स के अहं में वो लोगों को अहं-शून्यता के सम्भावित दर्शन को बताता रहता है. संभावनाएं सुंदर होती हैं. पर आजीवन प्रयासरत रहने के बाद भी यदि वो घटित न हो सकें तो व्यक्ति को परम उन्माद को प्राप्त हो, मृत्यु को प्राप्त हो जाना पड़ेगा.

सर्वज्ञानी होने का अहं-प्रधान उन्मादी मनोविज्ञान और उसके भ्रामक लॉजिक्स से बाक़ी चाहे जो भी हो परंतु उससे प्रेम कदापि नहीं फूट सकता.

2

उसी स्पीच में ओशो एक जगह कहता है- ''....मनुष्य से ज़्यादा प्रेम पशु और पक्षियों और पौधों में दिखायी पड़ता है, जिनके पास न कोई संस्कृति है न धर्म है....!''

यहां ओशो किस प्रेम की बात कर रहा है? क्या यह वही प्रेम है जो सेक्स-एनर्जी से रूपांतरित होकर जीवों में फूट पड़ता है और जीव प्रफुल्लित हो उठते हैं, संगीतमय हो उठते हैं??

एक नर पशु या नर पक्षी स्वयं को जन्म देनेवाली मादा पशु या मादा पक्षी के साथ संभोग कर लेता है. ऐसा पशु और पक्षियों में संभव है क्योंकि उनका न कोई धर्म है न संस्कृति.

ओशो के अनुसार संभोग से रूपांतरित ऊर्जा ही प्रेम के प्रवाह का एक मात्र स्त्रोत है. अतः यदि ओशो को पशु-पक्षियों में मनुष्यों की अपेक्षा अधिक प्रेम दिखाई देता है तो इसका सीधा मतलब है कि ओशो मनुष्यों में भी पशु-पक्षियों की सेक्स प्रवृत्ति को स्थापित करना चाहते हैं.

प्रेम की धारा बहे या न बहे पर मनुष्यों में इस तरह की वासना संभव ही नहीं है क्योंकि मनुष्य मननशील है और उसका अपना धर्म है, उसकी अपनी संस्कृति है.

बीसवीं सदी के मध्य से लगभग (ऑलमोस्ट) पूरे यूरोप में यौन स्वच्छंदता (सेक्सुअल फ्रीडम) आई. परिणाम हमारे सामने है. जिस सेक्सुअल फ्रीडम से प्रेम की धारा बहनी चाहिए थी, समाधि का मार्ग प्रशस्त होना चाहिए था, सब फूल की तरह प्रफुल्लित नज़र आने चाहिए थे, उसके चलते ऐसा कुछ नहीं हुआ. उल्टे पूरा यूरोप सांस्कृतिक उद्विग्नता

(कल्चरल-डिस्ट्रेक्शन) का शिकार हो गया.

पशु प्रवृत्ति वाली एक नयी संस्कृति का शुभारंभ करने वाला व्यक्ति कहता है, मानव सभ्यता की संपूर्ण संस्कृतियां ग़लत हैं.

3

उसी भाषण में एक स्थान पर ओशो कहता है- ''....क्योंकि सच्चाई यह है कि प्रेम की सारी यात्रा का प्राथमिक बिंदु काम है, सेक्स है....''

प्रेम जबकि सौन्दर्य से परिपूर्ण मन की एक निर्दोष स्थिति है न कि सेक्स जैसी भोग-विलास सम्मत शारीरिक सुख देनेवाली प्रक्रिया से उत्पन्न होनेवाली मनःस्थिति. हां, सेक्स परमात्मा का एक विशिष्ट वरदान ज़रूर है जिसके प्राकृतिक व्यवहार की परंपरा दुनिया की लगभग हर संस्कृति और हर धर्म में पायी जाती है. सौन्दर्य के प्रति सहज स्वाभाविक सच्चे प्रेम ने विविध कलाओं को जन्म दिया, प्रेम की वर्षा की, न कि संभोग के क्षणिक शारीरिक सुख ने. सेक्स वास्तव में जीवों की एक स्वाभाविक शारीरिक ज़रूरत से ज़्यादा कुछ नहीं है. वासना ने प्रेम, सौन्दर्य और कला को जन्म नहीं दिया. प्रेम स्वाभाविक है. सौन्दर्य स्वाभाविक है तथा इन दोनों के प्राकृतिक मिलन से कलाएं प्रकट हुईं.

ख़ैर, ओशो की धर्म और संस्कृतियों के पूर्वाग्रह वाली बात पर कौतूहल भरा सवाल मन में उठता है- विश्व के किसी भी धर्म या किसी भी संस्कृति में जन्मा बच्चा अपने बचपन में एकदम निर्विकार होता है. उसका मन हर तरह के पूर्वाग्रहों से मुक्त व पूरी तरह कोरा होता है. तो फिर उसी समय-काल में उसके मन में प्रेम का वो झरना क्यों नहीं फूट पड़ता, जो उसे परमात्मा की स्थिति तक पहुंचा दे?

जीव-मात्र के बचपन (चाइल्डहुड) में जो प्रेम-प्रवाह होता है वो ओशो द्वारा परिभाषित प्रेम नहीं है, क्योंकि ओशो के अनुसार प्रेम के प्रवाह का मूल स्त्रोत अनिवार्य रूप से काम-वासना है, संभोग है जबकि बच्चे तो

काम-वासना से, संभोग से उन्मुक्त होते हैं.

यहां गौर करनेवाली बात यह है कि ओशो के प्रेम-प्रवाह को प्राप्त होने के लिए बच्चे को पहले किशोरावस्था में जाना पड़ेगा और किशोरावस्था तक पहुंचते-पहुंचते वो धर्म और संस्कृति के प्रभाव में आ जाएगा. अतः ओशो के प्रेम-प्रवाह को प्राप्त होने के लिए मनुष्य को पहले पूर्वाग्रह से ग्रसित होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है.

जिन धर्मों व संस्कृतियों के पूर्वाग्रह को माननीय रजनीश सिरे से नकार देते हैं तथा उसके अस्तित्व को प्रेम के मार्ग का सबसे बड़ा अवरोध मानते हैं, वही पूर्वाग्रह उनके प्रेम-प्रवाह के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक भी है? ऐसा कैसे संभव है??

जब द्वार खुला हुआ था तब कुछ नहीं हुआ, कोई प्रेम-प्रवाह नहीं हुआ. पहले द्वार को बंद होने दो फिर स्वयं खोलो. अब प्रेम की ऐसी गंगा बहेगी जो परमात्मा की स्थिति तक ले जाएगी.

इससे ज़्यादा हास्यास्पद बात और क्या हो सकती है?

4

अपनी दूसरी स्पीच में ओशो कहता है- ''....लेकिन पौधे भी अपने-आप में तृप्त नहीं थे. वे सतत जीवन को जन्म देते रहे. उनकी भी कोई चेष्टा चल रही थी. वे पशुओं को, पक्षियों को जन्म देना चाहते थे. पशु, पक्षी पैदा हुए. हजारों-लाखों वर्षों तक पशु, पक्षियों से भरा था यह जगत. लेकिन मनुष्य का कोई पता नहीं था. पशुओं और पक्षियों के प्राणों के भीतर निरंतर मनुष्य भी निवास कर रहा था, पैदा होने की चेष्टा कर रहा था. फिर मनुष्य पैदा हुआ....''

मनुष्यों की उत्पत्ति की यह अवधारणा, दर्शन, ज्ञान तथा विज्ञान के धरातल पर अतार्किक, बिना किसी प्रमाण के एक निराधार अवधारणा है जिसके आधार पर महामनव तक की उत्पत्ति को ओशो प्रमाणित करना चाहता है.

एक निरंकुश संकल्पना के आधार पर जीवों में विकास के क्रम को परिभाषित करने का निरर्थक प्रयास किया है ओशो ने यहां.

वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में अब तक के शोध में ऐसा कोई परागीकरण संभव ही नहीं है जिससे वनस्पतियों से पशु या पक्षी उत्पन्न हो सकें. विज्ञान की हर शाखा प्रकृति के शाश्वत नियमों पर आधारित है.

अतः भविष्य में ऐसी कोई संभावना भी नहीं है जिससे वनस्पतियां पशु या पक्षियों को जन्म दे सकें. हां, अलग-अलग प्रजाति की वनस्पतियों के बीच परागीकरण करा कर एक तीसरी प्रजाति की वनस्पति अवश्य उत्पन्न की जा सकती है, पर किसी पशु या पक्षी के उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं है. पशु-पक्षी तो बड़े जीव हैं, एक चीटीं की उत्पत्ति की संभावना से

भी वनस्पति विज्ञान इंकार करता है.

ठीक इसी प्रकार पशु-पक्षियों से मनुष्य के उत्पन्न होने की प्रक्रिया भी जीव विज्ञान के नजदीक संभव नहीं है. पशु-पक्षियों में ऐसा कोई प्रोटीन, ऐसे किसी डीएनए के पाए जाने की कोई संभावना नहीं है जिससे मनुष्य की उत्पत्ति हो सके.

अब रही बात वनस्पतियों, पशुओं और पक्षियों के स्वयं से उत्तम जीव को जन्म देने की अनवरत चेष्टा की, तो किसी वस्तु की अनवरत चेष्टा करने का विज्ञान केवल मननशील जीवों का है. वनस्पतियां, पशु-पक्षी, जीव हैं, इनमें जीवन है पर ये मननशील नहीं हैं. अतः इनमें किसी प्रकार की चेष्टा का पाया जाना संभव नहीं है. धरती पर प्रत्यक्ष रूप से मननशील जीव मात्र मानव है, चेष्टाएं मात्र मानव-जीवन का विज्ञान है न कि वनस्पतियों एवं पशु-पक्षियों का.

सबसे अधिक हास्यास्पद बात तो यह है कि निर्जीव पत्थर-पहाड़ों ने वनस्पतियों को जन्म दिया, ओशो ऐसा अपनी इसी स्टेटमेंट में कहता है. यदि ओशो कहता कि ऐसा हुआ जिसे परमात्मा ने अपनी अथाह क्षमता से किया तो कोई भी इन बातों को सही मान लेता क्योंकि परमात्मा की बुद्धि (विज्डम) और क्षमता को किसी भी मनुष्य के लिए जान पाना तो दूर, उसकी कल्पना कर पाना भी संभव नहीं है. पर ओशो ने ऐसा न कह कर विकास के क्रम का श्रेय प्रकृति, जो स्वयं परमात्मा की व्यवस्था है, को तथा अपनी निरंकुश कल्पना को दे दिया. प्रकृति का एक विज्ञान है. प्रकृति अपने विज्ञान के विरुद्ध तभी जाएगी जब प्रकृति की इस व्यवस्था को संचालित करनेवाला चाहे. यदि वो न चाहे तो प्रकृति अपने पूर्व निर्धारित विज्ञान से चलती चली जाएगी... वो अपने विज्ञान से अलग स्वयं कोई चेष्टा नहीं कर सकती.

अपने सार्वजनिक भाषण (पब्लिक स्पीच) में ओशो पहले एक दंत कथा सुनाता है जिसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता. अमुक दंत कथा के सार से ओशो का मनोवैज्ञानिक क्रीड़ा शुरू होता है. फिर अपने

शब्द-सम्मोहन से उस दंत कथा के सार को वह अपने निजी दर्शन की ओर मोड़ देता है. अब सम्मोहित जन-समूह प्रेम की खोज में निरर्थक नाच शुरू कर देता है.

जिसके दर्शन का आधार दंत कथाएं हों, शब्द-सम्मोहन हो, मनोवैज्ञानिक क्रीड़ा हो, वो व्यक्ति जादूगर हो सकता है, सत्यार्थी नहीं.

5

उसी भाषण में ओशो आगे एक स्थान पर कहता है- ''....सम्भोग का इतना आकर्षण क्षणिक समाधि के लिए है. और संभोग से आप उस दिन मुक्त होंगे, जिस दिन आप को बिना संभोग के समाधि मिलना शुरू हो जाएगी. उसी दिन संभोग से आप मुक्त हो जाएंगे....''

यहां उसकी स्वयं के विचारों के साथ कितना बड़ा विरोधाभास है? अब तक की पूरी स्पीच में ओशो ''संभोग-संभोग'' का जाप कर रहा था और अब कह रहा है कि संभोग, जिसमें समाधि की क्षणिक अनुभूति है, उससे तभी मुक्ति मिल सकती है जब समाधि की स्थिति बिना संभोग के प्राप्त होने लग जाए!

ऐसा प्रकृति के किस विज्ञान में संभव है?? आध्यात्म के किस प्रयोग से संभव है??? मन के किस विज्ञान में संभव है???? भोग, संभोग और पदार्थ के किसी दर्शन में क्या ऐसी कोई संभावना भी है????? संभोग से समाधि की क्षणिक अनुभूति भी होती है और फिर समाधि की यात्रा, यहां तक कि परमात्मा की स्थिति तक पहुंचने के लिए संभोग का त्याग भी करना होगा. संभोग से पत्थरों में नमी तो पैदा होगी पर झरना तो संभोग से मुक्त होने के पश्चात ही फूटेगा!

संभोग से समाधि का द्वार खुलता है. ऐसा निरंतर करते रहने से या सेक्स के प्रयोग से एक स्थिति ऐसी आएगी कि द्वार बंद रहने पर भी हम समाधि को प्राप्त होने लग जाएंगे??

सेक्स के विषय में हम कितना भी जान लें, कोई भी प्रयोग कर लें, कितना भी विश्लेषण कर लें, कितना भी गूढ़ ज्ञान प्राप्त कर लें- सेक्स

कभी समाप्त नहीं हो सकता. हां, उस पर एक हद तक नियंत्रण जरूर पाया जा सकता है. यही सेक्स की प्रकृति है. यही सेक्स का विज्ञान है.

सेक्स किसी भी प्राकृतिक उपक्रम से समाप्त नहीं हो सकता. अतः ओशो समाधि का सुखद सपना दिखाकर संदेश देना चाहता है कि सारे अंकुश हटाकर खुल कर सेक्स करते रहो, भोग-संभोग में इतने लिप्त हो जाओ कि कुछ सोचने और करने के लायक़ ही न बचो.

भोग-संभोग या मैं यूं कहूं कि अति भौतिकवाद (एक्स्ट्रीम मटीरियलिज्म) एक धर्म है, जिसकी प्रैक्टिस में किसी आध्यात्म, सत्य, समाधि की कोई संभावना नहीं है. हां, निरंकुश इच्छाएं (डिज़ायर्स), असंतुष्टि (डिससेटिसफैक्शन), व्यग्रता (एंग्जाइटी), अपराध-बोद्ध (गिल्ट), हाइपरटेन्शंस, मनोवैज्ञानिक रोग और अप्राकृतिक सेक्स, इन्सिक्योरिटी, विश्वास का अभाव (लैक ऑफ़ फ़ेथ) इत्यादि स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं. इस धर्म के व्यवहार ने उन्मुक्त और उन्मादी पूंजीवाद (capitalism) को पूरी तरह से इंसानियत के एक बड़े हिस्से में स्थापित कर दिया है.

ओशो ने धर्म Materialism में आध्यात्म का भ्रम उत्पन कर दिया है. ड्रग्स लेने वाले व्यक्ति को यदि कहा जाए कि थोड़ी-थोड़ी मात्रा बढ़ाते जाओ तो तुम्हें परमात्मा के दर्शन की अनुभूति होगी तो वो नशे की उस भ्रामक स्थिति को परमात्मा मान भी लेगा पर वो सत्य तो है नहीं, अतः होश में आने पर वह घोर हताशा का शिकार हो जाएगा.

आध्यात्म के शार्ट-कट को समझाने वाले लोग अक्सर लोगों को ऐसी भ्रामक स्थितियों में डाल देते हैं. भोग-संभोग के उन्माद में शांतिपूर्ण जीवन-यापन के लिए आवश्यक मन की शांति तो है नहीं, सिवाय बेचैनी के. तो ऐसे लोग इसमें आध्यात्म और परमात्मा की स्थिति तक की घुट्टी लोगों को अपने निरंकुश-निराधार तर्क से पिला देते हैं.

धर्म मटीरियलिज्म में स्वच्छंदता (लिबरलाइजेशन) के नाम पर

सेक्स की निरंकुश प्रैक्टिस अपनी पूरी नग्नता में पाई जाती है- और धर्म मटीरीयलिज्म में समाधि की कोई संभावना उपलब्ध नहीं है.

मनुष्य के शरीर में जो आत्मा है, वो परमात्मा का अभिन्न अंश है, जो इस नश्वर संसार में मोह, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष इत्यादि के बीच निर्धारित समय के लिए मनुष्य के शरीर में रहती है. वो आत्मा स्वयं में समाधि-उत्प्रेरक है, जो व्यक्ति को मात्र सेक्स में ही अपनी क्षणिक उपस्थिति नहीं बल्कि जीवन में निरंतर अपनी उपस्थिति को मनुष्य के सम्मुख रखती रहती है. भिन्न-भिन्न क्रियाओं और मनःस्थितियों के मध्य. ओशो ने समाधि की स्थिति, वो भी क्षणिक सेक्स में दिखा कर जाने-अनजाने में सेक्स का ध्रुवीकरण कर दिया. कोई क्षणिक वस्तु या ध्रुवीकृत वस्तु-क्षणिक और नश्वर तो हो सकती है पर किसी अलौकिक यात्रा (Divine Journey) की वजह कभी नहीं बन सकती.

6

हर मज़ेदार बात सच हो यह ज़रूरी नहीं है और हर सच बात मजेदार हो, यह भी ज़रूरी नहीं है.

ओशो 'संभोग' शब्द से बात शुरू करता है. संभोग की इच्छा चूंकि मनुष्य की तीव्रतम प्रवृत्ति है इसलिए व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर ओशो को सुनना शुरू करता है. अब ओशो उन मनुष्यों को एक ऐसे सुखद आध्यात्म की ओर बहाना शुरू करता है जहां प्रेम, समाधि, आत्मा और अंततः परमात्मा तक की स्थिति है. एकाग्रचित्त मनुष्य बिना कुछ सोचे समझे आध्यात्म की ऐसी परम स्थितियों को अपने मन में बसाने लगता है, जिनका कि वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं होता. अंततः उसे निराशा के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता.

एक तरफ़ तो ओशो कहता है कि सेक्स को जानो- यह प्रेम का प्रथम अनिवार्य बिंदु है. प्रेम, समाधि फिर आत्मा की स्थिति से होते हुए परमात्मा की स्थिति तक पहुंचकर जीवन को सफल कर लो, महा आनंद को प्राप्त हो जाओ, शाश्वत आनंदमय हो जाओ.

दूसरी तरफ़ ओशो स्वयं कहता है कि मनुष्य में निरंतर एक चेष्टा है अपने से उत्तम मनुष्य को जन्म देने की, महामानव को जन्म देने की.

मनुष्य संभोग से प्रेरणा लेकर और सेक्स से मुक्त होकर जब परमात्मा की स्थिति को प्राप्त हो जाएगा फिर उसे महामानव को जन्म देने की क्या आवश्यकता है? वो भला क्यों ऐसी चेष्टा करेगा?? एक मनुष्य को ज़रूरत ही क्या है महामानव को जन्म देने की यदि वह मात्र सेक्स के रहस्य को जान कर परमात्मा की स्थिति तक पहुंच गया है???

यदि महामानव का जन्म हो भी जाए, जो इस प्रकार से संभव नहीं है, तो क्या वो महामानव अपने जन्म देनेवाले को परमात्मा की स्थिति तक ले जा सकता है? यह कौन सा आध्यात्म है? कौन-से विकास का क्रम है? कौन-सा विज्ञान है? कौन-सा दर्शन है? कौन-सा लॉजिक है? क्या है यह??

ओशो के दर्शन और आध्यात्म में जीनेवाला मनुष्य क्या करे? परमात्मा (समय-शून्यता की प्रकाष्ठा, अहं-शून्यता के चरमोत्कर्ष) को पहुंचे या महामानव को जन्म देने की चेष्टा में अनवरत लगा रहे? जबकि ओशो के अनुसार दोनों का स्रोत सेक्स है!!

7

मनुष्य की प्रवृत्ति सम्मत कमियां गिना दीजिए, उसकी उन स्वाभाविक त्रुटियों पर उसका मन केंद्रित कर दीजिए जिन्हें महसूस कर धीरे-धीरे वो उन पर विजय पा सकता है. यहां तक तो बात ठीक है पर उसके भावविभोर केंद्रित मन को भ्रमित कर देना, एक मनगढ़ंत दिशा में बहा देना कहां तक सार्थक है? दंत कथाओं से यह महसूस (रियलाइज़) कराना कि क्या सही है क्या गलत, माना कि व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए ज़रूरी है पर बात-बात पर अब तक के संपूर्ण आध्यात्मिक विकास को सिरे से ख़ारिज़ कर देना भला कहां तक उचित है?

अंततः काम-भावना से ऊपर उठकर यदि ध्यान से ही मन का विस्तार होना है तो यह दर्शन तो पहले से ही मौजूद है. फिर क्यों बार-बार ''सेक्स, सेक्स'' का जाप करना?? अब सेक्स को आध्यात्म से जोड़कर इतना सार्थक कर देना कि लोग कामुक हो उठें. फिर अंततः वही बात... कि अब काम-भावना का त्याग कर दें ताकि आपमें ध्यान का द्वार खुले, ताकि आप काम भावना से ऊपर उठकर अपना आत्म विस्तार कर सकें?

पशु की नग्नता और मनुष्य की नग्नता का तुलनात्मक विश्लेषण करना, वो भी निराधार अस्वाभाविक तर्कों से... फिर यह कह देना कि यह सब एक निर्दोष मन का स्वभाव है- इतनी निर्दोषिता मनुष्यों में पाई जानी कठिन है. पशुओं को मनुष्यों से ज़्यादा चरित्रवान सिद्ध कर देना इसलिए कि पशुओं के सेक्स का एक मौसम है, जबकि मनुष्य 24 घंटे कामुकता में जी रहा है.

अब भावविभोर श्रोता ख़ुद को जानवर से कमजोर चरित्र का मानने लग जाएगा. अब आगे उससे कहा जाएगा कि पशुओं की तरह नग्नता के विषय में निर्दोष बनो!

ऐसा हो पाना सामाजिक जीवन के संतुलित प्रवाह में कहां तक संभव है? समाज की आधारशिला, मानवता के विकास की आधारशिला, ठोस सत्य है न कि क्षणिक मनोवैज्ञानिक संतुष्टि. मनुष्य और पशु की नग्नता के विषय को ही ले लीजिए- यह निर्दोषिता का विषय नहीं बल्कि मननशीलता का विषय है. मनुष्य मननशील है, उसमें सोचने की क्षमता है, सत्य-असत्य को जानने का आभास है इसलिए मनुष्य नग्न नहीं रह सकता. जबकि पशु में मननशीलता नहीं है, वो भोग और संभोग के ऊपर नहीं सोच सकता, इसलिए वो नग्न है.

वास्तव में ओशो प्राकृतिक बातें करने वाला घोर अप्राकृतिक व्यक्ति है.

प्रकृति के विज्ञान को तर्क-कुतर्क के मायाजाल से गलत साबित तो नहीं किया जा सकता पर हां, सुननेवाले को एक ऐसे भ्रम में ज़रूर डाला जा सकता है कि वो जीवन भर उस भ्रम में ही सत्य को खोजता रहे और एक दिन निराशाजनक स्थिति में मर जाए.

8

ओशो इसी स्पीच में एक स्थान पर कहता है कि हमें अपने बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक घर में नग्नावस्था में रहने की आदत डालनी चाहिए ताकि वे एक-दूसरे के अंग-प्रत्यंग से परिचित हो सकें और उनमें काम-भावना की आकांक्षा विलीन हो जाए.

सबसे महत्वपूर्ण बात- दुनिया के किसी भी समाज के लिए ऐसा करना सिर्फ़ और सिर्फ़ विनाशकारी है. ऐसा करने से मानव सभ्यता का रुख जंगल तथा पशुता की ओर हो जाएगा.

14 साल की उम्र तक नर में शुक्राणु (स्पर्म्स) और मादा में डिम्ब (ओवम) बन जाता है. यदि अंगों को स्पष्ट रूप से जानने की प्रक्रिया के दौरान बच्चों में मैथुन क्रिया संपन्न हो जाए, जिसकी कि बहुत ज़्यादा संभावना है और ओशो को इस संभावना से कोई आपत्ति भी नहीं है, तो एक ऐसा जीव पैदा हो जाएगा जिसमें बहुत ही लो-क्वालिटी जीन्स पाया जाएगा. इसी कारण दुनिया के किसी भी समाज में सगे भाई-बहन की आपस में शादी नहीं होती. महामानव बनना तो दूर, निहायत कमजोर जीव बनेगा, जबकि ओशो के अनुसार मानव निरंतर चेष्टा कर रहा है महामानव को जन्म देने की?? जबकि बच्चों को नंगा रखने से कमजोर मानव उत्पन्न होगा??

साथ ही, मनुष्य की मननशीलता जो परमात्मा का सबसे बड़ा वरदान है, वो भी लज्जित होगी.

ओशो के अनुसार, ऐसी नग्नता से मानव आसमान को छू सकता है.

विकास रुका हुआ है क्योंकि धर्मों ने सेक्स पर अंकुश लगा रखा है.

अंकुश हटाकर ओशो की बातों का विश्लेषण कीजिए तो जैसा कि मैंने ऊपर कहा कि आप पाएंगे कि विकास तो दूर यहां तो पूरी मानवता जंगल और पशुता की ओर जाती नज़र आएगी.

9

सेक्स प्रत्येक जीव आनंद (प्लेजर) के लिए करता है जबकि 'ध्यान' (मेडिटेशन) मनुष्य आत्म-शुद्धि के लिए करता है. परंतु सेक्स में जिस स्थिति की क्षणिक अनुभूति है वही स्थिति ध्यान में ज़्यादा समय के लिए होगी.

दोनों क्रियाओं के उद्देश्य अलग-अलग हैं और स्थिति एक ही प्राप्त हो रही है जिसके लिए ओशो तर्क देता है- ऊर्जा का रूपांतरण!

वास्तव में सेक्स की ऊर्जा को किसी अन्य ऊर्जा में रूपांतरित ही नहीं किया जा सकता और सेक्स से कोई शक्ति क्षीण नहीं होती. रेग्युलर नेचुरल सेक्स करने वाला व्यक्ति भी ध्यानी जितनी आयु जी सकता है.

जीवों के शरीर में मात्र एक ही ऊर्जा काम करती है जिसे विज्ञान की भाषा में टेम्परेचर कहते हैं. कुछ वनस्पतियों और कुछ कीड़ों-मकोड़ों को छोड़कर लगभग सारे जीव ऑक्सीजन (O2) ग्रहण करते हैं जिससे उनके शरीर में एक रासायनिक क्रिया होती है. इस रासायनिक क्रिया के संपन्न होने पर ऊर्जा उत्पन्न होती है जिससे जीवों की प्रत्येक कोशिका (सेल) जीवित रहती है. यदि ऑक्सीजन ग्रहण करना अर्थात सांस लेना बंद हो जाए तो ऊर्जा उत्पन्न नहीं होती तथा जीव की कोशिकाएं (सेल्स) एक-एक करके मृत (डेड) होने लगती हैं और अंततोगत्वा जीव मर जाता है. अधिक स्पष्ट करने के लिए उस रासायनिक क्रिया को उद्धृत करता हूं-

$$C6H12O6+6O2 = 6CO2+6H2O+ \text{Energy}$$

कार्बोहाइड्रेट + ऑक्सीजन = कार्बनडाईऑक्साइड + पानी + ऊर्जा

ऐसा क्यों होता है यह तो विज्ञान को नहीं पता पर यही होता है यह पता है.

ख़ैर, उपरोक्त रासायनिक क्रिया में जीव अपनी श्वास-प्रक्रिया के माध्यम से ऑक्सीजन (O2) लेता है जो कार्बोहाइड्रेट (C2H12O6) से मिलकर, कार्बनडाईऑक्साइड (CO2) और पानी (H2O) बनाती है व साथ में ऊर्जा उत्पन्न होती है. हम सांस छोड़ते समय कार्बनडाईऑक्साइड (CO2) वातावरण में छोड़ देते हैं. शरीर में पानी (H2O) और ऊर्जा बचते हैं जो हमें और हमारे एक-एक सेल को जीवित रखते हैं.

यही ऊर्जा सेक्स के समय भी बनती है और यही ऊर्जा ध्यान के समय भी बनती है. अर्थात् इसी ऊर्जा से सारी जैविक क्रियाएं संपन्न होती हैं. उपरोक्त दोनों क्रियाओं में शरीर को ज़्यादा ऊर्जा की आवश्यकता होती है इसलिए इन क्रियाओं के दौरान जीव के सांस की रफ्तार बढ़ जाती है. इसी ऊर्जा का उपयोग कर मस्तिष्क सारे शरीर को संचालित करता है.

यहां कौन-सी ऊर्जा किस ऊर्जा में रूपांतरित हो रही है? जीवों में हर क्रिया के सम्पादन के लिए ऊर्जा का मात्र एक ही स्रोत (सोर्स) है जिसका संक्षिप्त विवरण मैंने ऊपर दिया है. एक ही ऊर्जा दोनों क्रियाओं में लग रही है- सेक्स में भी, ध्यान में भी.

अब आप ख़ुद सोचें कि आध्यात्म का नाम लेकर ऊर्जा-रूपांतरण करवाना और दो अलग-अलग क्रियाओं में एक ही स्थिति को जस्टीफाई करना कहां तक सही है? यह एक भ्रम (इल्यूज़न) नहीं तो और क्या है?

10

अपने स्पीच में ओशो एक स्थान पर कहता है- ''....काम-भावना विलीन हो जाए तो पत्नी मां जैसी हो जाती है....''.

एक पुरुष कहीं भी विद्यमान हो, यदि पत्नी के पास होगा तो उसमें काम-भावना जागेगी और मां के पास होगा तो उसमें काम भावना नहीं जागेगी. ऐसा इसलिए होगा क्योंकि मानव मन में सही और ग़लत की तमीज प्राकृतिक रूप से पायी जाती है.

भ्रमित मस्तिष्क कभी अपनी क्षमता (पोटेन्शियल) का प्रयोग ढंग से नहीं कर पाता. ऐसे लोग अपने समाज को कभी कोई योगदान (कंट्रीब्यूट) नहीं कर पाते.

ओशो लोगों को भ्रमित मनोस्थिति (कंफ्यूज्ड माइंड स्टेट) देता है क्योंकि कंफ्यूज्ड ब्रेन को किसी भी दिशा में मोड़ना, कल्पना (फैन्टेसाइज़) कराना, सम्मोहित करना बहुत आसान होता है. उसके बाद वह उन्हें आध्यात्मिक भ्रम (स्पिर्चुअल इल्यूज़न) की ओर धकेल देता है जहां समाधि, परमात्मा तो दूर सामान्य जीवन-यापन के लिए आवश्यक मानसिक शांति (पीस ऑफ माइंड) भी इंसान से छिन जाती है. किसी भी अप्राकृतिक धारा में बहने के परिणामस्वरूप ऐसा होना स्वाभाविक है.

अगर हम अपने समाज को कंट्रिब्यूट नहीं कर सकते तो उसे भ्रमित या कमजोर करने का भी हमें कोई अधिकार नहीं है.

ओशो का दर्शन अपने उद्गम (ओरिजिन) से ही आधारहीन है, अप्राकृतिक है, असामाजिक है, विकास के प्राकृतिक क्रम का विरोधी है, मननशीलता और संवेदनशीलता के विपरीत है, जीवों में प्राकृतिक रूप

से पायी जानेवाली सबसे तीव्र प्रवृत्ति का ध्रुवीकरण है. इस तीव्र प्रवृत्ति के साथ मनोवैज्ञानिक क्रीड़ा कर उसने लोगों को पथभ्रष्ट किया है.

खेल-खेल में परमात्मा के दर्शन का भौतिक सूत्र देता है ओशो, जो न वैज्ञानिक है, न आध्यात्मिक है और न ही दार्शनिक.

ओशो अपने दर्शन में विकास के नाम पर पूंजीवाद (कैपिटलिज्म) और भौतिकवाद (मटीरियलिज्म) को पागलपन की हद तक बढ़ावा देता है.

ओशो के दर्शन में गरीब लोग निरर्थक और कमजोर जीन्स के जीव हैं इसलिए वह उनके अस्तित्व का तिरस्कार करता है. बेसिकली वह 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट' की बात करता है जो पशुओं का चरित्र है, मनुष्यों का नहीं.

11

अपने हर भाषण में ओशो सारी बातें कह कर धर्म, संस्कृति और धर्म-गुरुओं को गलत बता कर मानवता का दुश्मन ठहराते हुए कहता है- स्वयं में परमात्मा को ढूंढो!'' ढूंढने का वह एक ही मार्ग बताता है- ध्यान! ''ध्यान से तुम खुद को जानोगे, समाधि को पहुंचोगे, प्रेममय हो जाओगे, आत्मा का दर्शन होगा फिर परमात्मा को प्राप्त हो जाओगे.

जब ध्यान ही एक मार्ग है तो इसमें ओशो ने नयी बात क्या बता दी? ओशो ने जिस धर्म को सिरे से नकार दिया वहीं पे यह दर्शन हजारों साल पहले से मौजूद है.

सनातन पुराणों (माइथोलॉजी) में हजारों साल पहले से ध्यान के माध्यम से परमात्मा को प्राप्त होने का दर्शन मौजूद है.

उस सनातन धर्म को माननीय रजनीश बार-बार गलत ठहराते हैं और दंत कथाएं सुना कर लोगों को कन्फ्यूज्ड कर अंत में वही दर्शन बेच कर आगे बढ़ जाते हैं.

माना कि संस्कृतियों में कमियां रही हैं, धर्म में परिवर्तन कर के लोगों को गुमराह किया गया है, बेशक इन मुद्दों पर सुधारवादी बातें होनी चाहिए.

पर यदि आप समस्त धर्मों व तमाम संस्कृतियों को मिथ्या, निरर्थक और विनाशकारी कहते हैं तो आपके पास एक ऐसा नया सत्य होना चाहिए जो आप से पहले मानवता के पास न रहा हो.

ओशो बातें वही करता है जो पहले कहीं दंत कथा के रूप में कही गयी हैं, किसी दार्शनिक ने कही है, किसी धर्मगुरु ने कही है.... उन्हीं को

ओशो अपने भाषणों में उद्धृत (क्वोट्) करता रहता है और फिर भी वे सब के सब मानवता के दुश्मन हैं और ओशो मानवता के एक मात्र शुभचिंतक हैं, जिनके पास अपना एक शब्द भी नहीं है!

अगर आप सत्य को बता पाने में असमर्थ होते हुए भी लोगों को भ्रमित कर सकते हैं तो आप सत्यार्थी नहीं हो सकते. हां, आप जादूगर ज़रूर हो सकते हैं. आप अपनी बातों से लोगों को सम्मोहित कर के लोगों से वही कहलवा सकते हैं जो आप उनसे कहलवाना चाहते हैं. लोगों की नज़र के सामने सम्मोहन का पर्दा डाल कर वही दिखा सकते हैं जो आप उन्हें दिखाना चाहते हैं. यह जादूगरी है, सम्मोहन कला है, न कि सत्य की ख़ोज की कोई नयी धारा!

सम्मोहित व्यक्ति भला सत्य की ख़ोज क्या करेगा? वो बेचारा तो एक सहज सामान्य जीवन से भी वंचित रह गया. यदि जीते जी उसका सम्मोहन टूटा तो वो इतनी गहरी निराशा का शिकार होगा कि पागल हो जाने के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई विकल्प (ऑप्शन) नहीं होगा.

सभी धर्म गलत हैं, सब-के-सब धर्मगुरु गलत हैं पर उनकी हजारों साल पुरानी ख़ोज- 'ध्यान' सही है??

माननीय रजनीश से अच्छा तो एक पूर्वाग्रह से ग्रस्त (बायस्ड) व्यक्ति है जो कम-से-कम जिस विचारधारा से है, उस पर अडिग तो है. वो यह तो मानता है कि मैं सिर्फ़ यही मानता हूं. माननीय रजनीश की तरह सबको ग़लत कहना और बातें सब उनकी ही करना, ऐसा ढोंग तो नहीं करता.

12

ओशो कहता है- ''....सेक्स से शक्ति क्षीण होती है. व्यक्ति मृत्यु के क़रीब पहुंचने लगता है....''

यह एक अवैज्ञानिक परिभाषा (स्टेटमेंट) है. प्राकृतिक और संतुलित सेक्स शरीर और मस्तिष्क को स्वस्थ रहने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है. शक्ति क्षीण होने वाली बात मात्र एक मनोवैज्ञानिक भ्रम है. प्राकृतिक और संतुलित सेक्स की व्यवस्था को दुनिया की लगभग हर संस्कृति, हर धर्म ने सहर्ष स्वीकार किया है. इसके अप्राकृतिक अभ्यास (प्रैक्टिस) पर ज़रूर अंकुश है.

जहां तक शक्ति क्षीण होने वाली बात है तो जीवों में सभी जैविक क्रियाओं में एनर्जी बर्न होती है, साथ ही रेग्युलर ऊर्जा उत्पादन की व्यवस्था भी जीवों के शरीर में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध है.

जहां तक मृत्यु का सवाल है तो वो भी एक स्वाभाविक सत्य और प्राकृतिक घटना है. सेक्स न करने से कोई दो सौ साज ज़िंदा रहेगा ऐसी कोई व्यवस्था प्रकृति में उपलब्ध नहीं है.

योग से, ध्यान से मस्तिष्क की क्षमता (पोटेन्शियल) का ज़्यादा-से-ज़्यादा उपयोग किया जा सकता है, परंतु आयु को नहीं बढ़ाया जा सकता.

ध्यान का विश्लेषण आप आध्यात्मिक दृष्टि से करें तो आप पाएंगे कि आप मात्र परमात्मा को जान सकते हैं, ख़ुद को परमात्मा के क़रीब महसूस कर सकते हैं, ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन परमात्मा से मिलन सिर्फ़ और सिर्फ़ मृत्यु के बाद ही संभव है. आत्मा और परमात्मा के मध्य सेतु मृत्यु है, जो योगी और भोगी दोनों के

जीवन में अपने निर्धारित समय पर घटित होती है.

मैंने अक्सर सुना है, पढ़ा है- फलां व्यक्ति ने समाधि ले ली, अमुक व्यक्ति को निर्वाण प्राप्त हो गया, वो अपनी इच्छा से संसार को छोड़ कर चला गया, फलां साहब को मुक्ति मिल गयी.

ये समाधि, निर्वाण, इच्छा मृत्यु, मुक्ति आदि क्या है? जीवन का एक मात्र सत्य है मृत्यु! हां, इन शब्दों को ज्यादा-से-ज़्यादा 'सफल मृत्यु' का पर्याय कह सकते हैं. जैसे पदार्थ जगत में सफल और असफल दो जीवन हैं वैसे ही सफल और असफल दो प्रकार की मृत्यु हैं. हमारा जीवन सफल मृत्यु को प्राप्त होने के लिए है.

ओशो के शिष्यों को उसकी ज़रूरत अभी बाक़ी ही थी कि उसकी मृत्यु का समय आ गया और उसे भी मरना पड़ा. यही सत्य है जीवन का.

13

ओशो अगले स्पीच में कहता है- ''....आदमी का कोई बंधा हुआ समय नहीं है. क्योंकि पशु शायद संभोग की गहराई में उतरने में मनुष्य से ज़्यादा समर्थ है और मनुष्य उतना भी समर्थ नहीं रह गया है...''

ओशो को जब भी अवसर मिलता है मनुष्यों को पशुओं से ज़्यादा असभ्य घोषित कर देता है. इसीलिए मैं कहता हूं कि ओशो मनुष्यों में पशु-प्रवृत्ति वाली विनाशकारी संस्कृति का उद्घोष करना चाहता है, संभोग से सर्वनाश की ओर ले जाना चाहता है.

संभोग के मामले में ओशो एक तरफ़ पशुओं के ज़्यादा गहराई में पहुंचने की बात कर रहा है तो दूसरी तरफ़ ओशो के ही अनुसार मानव सेक्स की गहराई में उतर कर महामानव को जन्म देने की चेष्टा में है.

संभोग से जीव की उत्पत्ति होती है और संभोग की गहराई में पशु उतर गया है. अतः महामानव का जन्म भी पशुओं से संपन्न होगा??

अपनी ही बात को स्वयं झूठा साबित कर देना, यह कैसा बुद्धत्व है??

प्राकृतिक रूप से जीवों के मस्तिष्क की एक शारीरिक यंत्र रचना (बॉयोलॉजिकल मेकैनिज्म) है जिसके अनुसार जीवों में सेक्स की प्रवृत्ति पाई जाती है. मनुष्य के मस्तिष्क में सेक्स को कंट्रोल कर पाने की क्षमता है इसलिए उसका कोई समय नहीं होता जबकि पशुओं में यह क्षमता नहीं होती इसलिए उनका निर्धारित समय है.

पशुओं ने सेक्स पर गहरा प्रयोग करके या ध्यान में लीन होकर अपना समय निर्धारित तो किया नहीं है.

14

उसी स्पीच में ओशो आगे कहता है- ''...अगर संभोग एक मिनट तक रुकेगा तो आदमी दूसरे दिन फिर संभोग के लिए लालायित हो जाएगा. अगर तीन मिनट तक रुक सके तो एक सप्ताह तक उसे सेक्स की याद भी नहीं आएगी और अगर सात मिनट तक रुक सके तो तीन महीने के लिए सेक्स से इस तरह मुक्त हो जाएगा कि उसकी कल्पना में भी यह विचार प्रविष्ट नहीं होगा. और अगर तीन घंटे तक रुक सके तो जीवन भर के लिए मुक्त हो जाएगा. जीवन में उसको कल्पना भी नहीं उठेगी....''

मनोवैज्ञानिक प्रयोग के माध्यम से मनुष्य में संभोग की अवधि बढ़ाई जा सकती है. ओशो की यह बात बिल्कुल सही है. पर अगर एक मिनट से तीन मिनट तक बढ़ाने पर एक सप्ताह तक सेक्स की इच्छा मन में उत्पन्न नहीं होगी, सात मिनट करने पर तीन महीने और तीन घंटा करने पर जीवन भर सेक्स की इच्छा मन में उत्पन्न नहीं होगी. यहां इच्छा न उत्पन्न होनेवाली बात एकदम निराधार और सेक्स की प्रकृति के विरुद्ध है. सेक्स की इच्छा सेक्स की अवधि बढ़ाने के अनुपात (प्रपोशन) में नहीं होती. संभोग की अवधि बढ़ाने से शारीरिक और मानसिक लाभ हो सकता है पर सेक्स की इच्छा समाप्त होती जाएगी ऐसी कोई व्यवस्था मनुष्य के शरीर में नहीं है. संयम रख पाने की क्षमता बढ़ जाएगी पर इच्छा तो उत्पन्न होगी ही.

माननीय रजनीश सेक्स की विज्ञान के गूढ़ ज्ञानी थे. उन्होंने जीवन भर अपने गूढ़ ज्ञान को एक काल्पनिक सेक्सुअल दिव्य लोक (डिवाइन) की अप्राकृतिक ख़ोज में झोंक दिया और बाक़ी ज्ञान को सत्य के तिस्कार

में नष्ट करके जब इस दुनिया से जाने लगे तो अपनी आत्मा को एक महिला को दे दिया, जिस महिला के शरीर में वे आज तक एक बार भी प्रविष्ट नहीं हुए. उस महिला को स्वयं में आज तक उनकी आत्मा का अनुभव नहीं हुआ.

15

अब तक के ज्ञात ज्ञान के अनुसार जीवन में आत्मा के अतिरिक्त शरीर, भोग, संभोग आदि सब कुछ नश्वर हैं तथा इनमें समाधि की स्थिति संभव ही नहीं है.

ओशो संभोग की एक विशिष्ट स्थिति को क्षणिक समाधि बताता है. समाधि पूरी तरह समाधि होती है, 'क्षणिक समाधि' शब्द ही भ्रमित बुद्धत्व की संकल्पना है.

समाधि की स्थिति संतुलित प्राकृतिक जीवन जीने वाले मनुष्य में परमात्मा से परम प्रेम और परम समर्पण से उत्पन्न होगी, जो क्षणिक नहीं होगी. संभोग में प्राप्त होनेवाली शून्यता कोई समाधि की स्थिति नहीं है. वो शारीरिक सुख का चरम बिंदु है न कि कोई डिवाइन.

डिवाइन सत्य है इसलिए वो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों क्षणों में एक ही स्थिति में होगा. वो कभी वर्तमान में क्षणिक रूप से उपलब्ध होकर व्यतीत (पास्ट) नहीं होगा और फिर भविष्य की आशा नहीं होगा, वो यदि एक बार मिल गया तो समय और क्षण-भंगुरता से परे होगा.

16

अपने स्पीच में ओशो आगे कहता है- ''....श्वास के शिथिल होते ही संभोग की गहराई, अर्थ और नये उद्घाटन शुरू हो जाएंगे. और एक संभोग व्यक्ति को सदा के लिए ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित कर देगा....''

संभोग के समय-काल में श्वास को शिथिल करने से मस्तिष्क को ऑक्सीजन की सप्लाई कम हो जाएगी और मस्तिष्क की कोशिकाओं में मृत्यु का उद्घाटन होगा और ज्यादा शिथिल किया तो हार्टबीट इतनी बढ़ जाएगी कि व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा.

ओशो की हर बात भ्रामक व प्रयोग जानलेवा है.

ओशो अप्राकृतिक बातें करके, अप्राकृतिक प्रयोग बता कर लोगों को अपने तरीक़े से परमात्मा का रहस्य समझा देता है और लोग दीवानेपन की हद तक उसे मान भी जाते हैं.

17

आगे ओशो एक और बड़ी हास्यास्पद बात कहता है. वो कहता है- जिनमें सेक्स की इच्छा नहीं पायी जाती वो पिछले जनम में सेक्स का गहरा प्रयोग कर चुके हैं इसलिए वो इस जन्म में जन्मजात ब्रह्मचारी हैं. जिन लोगों को दुनिया नपुंसक कहती है उन्हें ओशो जन्मजात ब्रह्मचारी मानता है.

जो पिछले जनम में ही सेक्स की गहराई में उतर गया हो उसने उसी जनम में परमात्मा की स्थिति को पा लिया होगा, ऐसा ओशो स्वयं मानता है. अब प्रश्न यह उठता है कि अब उसे जन्मजात ब्रह्मचारी के रूप में दूसरा जन्म लेने की क्या आवश्यकता है? पुनर्जन्म तो तब होगा न जब मनुष्य परमात्मा की स्थिति को उपलब्ध न हो पाया हो?

जिन मनुष्यों में बचपन से ही सेक्स की इच्छा नहीं पाई जाती, ऐसा उनमें भ्रूण-विकास के समय की एक अव्यवस्था (डिसऑर्डर) की वजह से होता है. यह एक बीमारी है न कि पिछले जनम के गंभीर सेक्स प्रयोग की वजह से है. बचपन से ही सेक्स-इच्छा का उत्पन्न न होना एक हार्मोनिक डिसऑर्डर है. इस बीमारी से ग्रस्त लोगों के अतिरिक्त धरती पर एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसमें सेक्स की इच्छा न पाई जाती हो. यह प्रकृति का नियम है.

और तो और, अपने स्पीच में एक महिला के सवाल पर ओशो स्वयं को जन्मजात ब्रह्मचारी घोषित कर रहा है.

एक जन्मजात ब्रह्मचारी व्यक्ति कहता है कि संभोग के गहरे अनुभव के बग़ैर ब्रह्मचर्य संभव ही नहीं??

18

ओशो आगे कहता है- ''....योगी भी जुड़ता है, साधू भी जुड़ता है, संत भी जुड़ता है, समाधिस्थ व्यक्ति भी जुड़ता है, संभोगी व्यक्ति भी जुड़ता है...''

ओशो के अनुसार संभोग के रहस्य को जान कर ही, संभोग के गहरे प्रयोग के बाद ही व्यक्ति परमात्मा से जुड़ सकता है, अन्य कोई विधि नहीं है.

योगी, साधू, संत और समाधिस्थ- इनमें सेक्स की इच्छा मौजूद होती है. ये संयम से काम वासना पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं न कि पिछले जनम के संभोग के गहरे प्रयोग से इस जनम में सेक्स से मुक्त होकर जुड़ गये हैं.

सारे योगी, साधू, संत और समाधिस्थ जन्मजात ब्रह्मचारी हों, ऐसा नहीं है. इनमें सेक्स की प्रवृत्ति होती है पर संयम से सेक्स पर विजय प्राप्त कर ये लोग योगी, साधू, संत और समाधिस्थ बनते हैं.

परमात्मा से जुड़ने की एक मात्र विधि जो ओशो ने बताई, वही ओशो उन लोगों के जुड़ने को भी मान रहा है जो ओशो की इस एक मात्र विधि का प्रयोग नहीं करते. उनका प्रयोग अलग है, फिर भी उनके जुड़ने को ओशो मान रहा है.

सत्य को सत्य न मानने की ज़िद में ओशो बार-बार अपनी ही बात को स्वयं काट देता है.

असत्य और भ्रम को सत्य का चोला पहनाने की कोशिश की जाए तो ऐसा होना स्वाभाविक है.

भ्रम को प्रभावशाली ढंग से लोगों के सामने रख देने से भ्रम, सत्य नहीं

हो जाता- सत्य तो सत्य है, अपने-आप में पूर्ण है.

परमात्मा से मिलने का रहस्य मृत्यु में है. मृत्यु जीवन का शाश्वत सत्य है. मृत्यु को जानना मात्र परमात्मा-दर्शन का एक मार्ग है, जिसे ओशो सेक्स के प्रयोग में बताता है.

हर समय परमात्मा को याद करते रहनेवालों पर, अच्छे कर्म करनेवालों पर परमात्मा की विशेष दृष्टि बनी रहती है जिसे हम चाहें जो भी नाम दें पर परमात्मा-दर्शन सिर्फ़ और सिर्फ़ मृत्यु के बाद ही संभव है.

झूठे और ढोंगपूर्ण (फेक्) दर्शन को प्रभावशाली ढंग से कह देने से वो दर्शन सत्य का भ्रम हो सकता है, सत्य नहीं. सत्य तो जगजाहिर है.

सिद्ध पुरुष का काम होता है स्वयं सत्य पर स्थापित रहते हुए सत्य पर टिकने के लिए लोगों का मार्गदर्शन करना, न कि भोग-संभोग में समाधि का मार्ग दिखाकर लोगों को गुमराह कर देना.

एक मित्र ने बताया कि ओशो-कम्यून्स में जाने के लिए कुछ अनिवार्य शर्तें (कॅन्डीशंस) हैं जिनमें से एक है एच.आई.वी. टेस्ट. यदि किसी का एच.आई.वी. पॉजिटिव आ गया तो उसे प्रवेश नहीं मिलेगा, भले ही वो ओशो का कितना भी बड़ा भक्त क्यों न हो. अगर ऐसा है तो क्या ऐसे व्यक्ति को स्वयं को जानने का अधिकार नहीं है? क्या ऐसे व्यक्ति को सेक्स का गहरा प्रयोग कर परमात्मा की स्थिति को प्राप्त होने का अधिकार नहीं है??

मृत्यु से ऊपर उठने की दुकान खोलकर बैठे हैं और मृत्यु से ही सबसे ज़्यादा डरते भी हैं. इस दर्शन को अगर हम निराधार और फेक् कहते हैं तो क्या ग़लत कहते हैं?

19

आगे ओशो कहता है- ''....अगर प्रेम से विवाह निकलता हो तब तो विवाह एक गहरा अर्थ ले लेता है और विवाह यदि पंडितों के और ज्योतिषियों के हिसाब से, किताब से, जाति के विचार से और धन के विचार से निकलता हो तो वैसा विवाह कभी भी शरीर से ज़्यादा गहरा नहीं जा सकता.

जो समाज प्रेम के आधार पर विवाह को निर्मित करेंगे उन समाजों में तलाक अनिवार्य होगा. उन समाजों में विवाह परिवर्तित होगा. विवाह स्थायी व्यवस्था नहीं हो सकती, क्योंकि प्रेम तरल है.

मन चंचल है. शरीर स्थिर और जड़ है....''

इन बातों से पहले इसी स्पीच में ओशो ने कहा कि प्रेम-प्रवाह का प्राथमिक बिंदु अनिवार्य रूप से वासना है. संभोग की ऊर्जा ही रूपांतरित होकर प्रेम में परिवर्तित होती है. पंडितों, ज्योतिषियों द्वारा संपन्न विवाह के बाद भी संभोग को ही तो होना है. वहां से भी सेक्स ऊर्जा रूपांतरित होकर प्रेम में ही तो परिवर्तित होगी न?

दुनिया के हर सभ्य समाज में विवाह के बाद संभोग की परंपरा है. ऐसे विवाह में संभोग मात्र शरीर के तल पर होगा, यह कहकर ओशो अपने ही मूलभूत सिद्धांत को स्वयं झूठा ठहरा रहा है.

ओशो के ही अनुसार प्रेम-प्रवाह का अनिवार्य बिंदु संभोग है इसलिए विवाह कैसे हुआ है, यह महत्वपूर्ण नहीं होना चाहिए. महत्वपूर्ण बात तो संभोग है. हां, पैसों और जात-पात पर आधारित विवाह हमारी संस्कृति की एक निंदनीय परंपरा है, एक घृणित परंपरा है.

20

इसी भाग में ओशो कहता है- ''....प्रेम-विवाह गतिमान है, परिवर्तनशील है, इस प्रकार का विवाह एक गहरा अर्थ लेता है....''

ओशो के ही अनुसार पहले संभोग होगा, संभोग पर गहरा प्रयोग होगा और मन प्रेममय होगा. अतः पहले संभोग करें, जब मन प्रेममय हो उठे तो विवाह कर लीजिए. प्रेममय हो जाने के बाद मन संभोग से दूर होने लगता है. अब विवाह होगा तो उसे टूटना ही पड़ेगा?? विवाह का यह गहरा अर्थ है.

21

उसी कथन में ओशो आगे कहता है- ''....प्रेम-विवाह परिवर्तित होगा आपको बार-बार विवाह करना होगा....'' ओशो के ही अनुसार- प्रेममय होने के लिए एक ही गहरा संभोग पर्याप्त है और यहां कह रहे हैं कि प्रेम-विवाह करते रहो, सेक्स पार्टनर बदलते रहो क्योंकि प्रेम तरल है.

एक ही कथन में ओशो कहता है- प्रेम से निकला विवाह गहरा अर्थ ले लेगा और आगे कहता है कि प्रेम से निकला विवाह परिवर्तित भी होता रहेगा.

जब विवाह गहरे अर्थ में पहुंच जाएगा तो परिवर्तित क्यों होगा??

ओशो के दर्शन को संक्षिप्त में परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि ओशो कहता है- ''मैं जो कह रहा हूं यही एक मात्र सत्य है और मैं जो कह रहा हूं वही सबसे बड़ी मिथ्या भी है. और मेरी एक ही बात के इन दोनों गहरे अर्थों के ऊपर सत्य का परम भ्रम है. परम भ्रम में ही एक आसक्ति प्रधान तृष्णा है. मेरा तर्कपूर्ण मस्तिष्क (लॉजिकल ब्रेन) तुम्हें जीवन भर भ्रम नगरी में भ्रमण करवाता रहेगा. मुझे मानो मत, जानो! जानोगे, तभी आजीवन भ्रमित रह पाओगे.''

पहले संभोग करो, उसके बाद प्रेम करो, प्रेम के बाद विवाह करो- ऐसा करोगे तो बार-बार विवाह करते रहोगे. बस लगे रहो. कुछ सोचने के लायक़ ही न बचो. ऐसा करते रहोगे तो न मैं तुम्हारे प्रश्नों के घेरे में आऊंगा और न मुझे भगवान बनने से कोई रोक पाएगा. तुम पशु-प्रवृत्ति के बन जाओ तो मैं बिना किसी रोक-टोक के भगवान हो जाऊंगा. तुम सभ्य बचोगे तो मेरी बातों का विश्लेषण करोगे और उसके पश्चात मेरे ऊपर जूते बरसाओगे, पर तुम्हारा जन्म तो मेरे ऊपर डॉलर्स बरसाने के लिए हुआ है. इसलिए मुझे मानो मत जानो ताकि लगे रह सको.

22

ओशो कहता है- ''....जब प्रेम के बिना विवाह होता है उस विवाह में और वेश्या के पास जाने में बुनियादी भेद नहीं, थोड़ा-सा भेद है. वेश्या को आप एक दिन के लिए खरीदते हैं और पत्नी को आप पूरे जीवन के लिए ख़रीदते हैं....''

विवाह के पीछे जो दर्शन है वो पत्नी को जीवन भर के लिए खरीदने की नहीं बल्कि जीवन भर के लिए एक-दूसरे के प्रति समर्पण की है, त्याग की है, प्रेम की है, ऑनेस्टी की है, कमिटमेंट की है, सम्मान की है, अधिकार की है- जिसे ओशो बेहद ओछी नज़र से देखता है.

ओशो के निकट वेश्याएं घृणित हो सकती हैं पर मेरे निकट वो घृणित या ओशो के दया-भाव की पात्र नहीं हैं. वेश्याओं की भी अपनी एक संस्कृति है, एक धर्म है, उनके वहां कर्म की प्रधानता है जबकि ओशो के यहां भोग-विलास की प्रधानता है, कैपिटलिज्म की प्रधानता है.

सामाजिक विकृतियों की समीक्षा ज़रूरी है- यह जीवित मानवता का प्रतीक है. विकृतियों को घृणित साबित कर मानवता को विनाश (डिज़ास्टर) की ओर ले जाने का प्रयास जो ओशो करता है, वो कहां तक सही है?

ओशो ने पिछले कथन में सेक्स के दो तलों की बात की थी. पहली बात तो सेक्स शरीर के दो अंगों का मिलन ज़रूर है पर सेक्स इच्छा की उत्पत्ति मन से संबंधित है, मस्तिष्क से संबंधित है. सेक्स चाहे प्रेम में हो, विवाह में हो, वेश्या के साथ हो, सब मन के धरातल पर ही होता है. संभोग में शरीर का कोई और तल एक्जिस्ट ही नहीं करता. एक ही तल होता है और वो है मन का तल.

मन के तल को गहरा कहना, शरीर के तल (जो है ही नहीं) को निम्न स्तर का कहना, यह भ्रमित करने की एक शब्दावली है.

सम्मोहक शब्दावली से ओशो चीज़ों की परिभाषा तक बदल देता है.

उपरोक्त तीनों स्थितियों में सेक्स करने से स्खलन के क्षण एक ही तरह की अनुभूति होती है जिसे ओशो क्षणिक समाधि कहता है. वेश्या के साथ भी क्षणिक समाधि प्राप्त हो रही है तो ओशो के समक्ष वह इतनी घृणित क्यों है?

23

अपने स्पीच में एक स्थान पर ओशो कहता है- ''....मां का बेटे के प्रति जो प्रेम है वह आध्यात्मिक काम है, वह स्पिरचुअल सेक्स

का हिस्सा है....''

एक नयी शब्दावली-स्पिरचुअल सेक्स! जबकि ओशो पहले बार-बार कह चुका है कि स्पिरचुअल लेवल पर काम की भावना पूर्णतया समाप्त हो जाती है. ख़ैर! चलिए मान लिया कि मां का बेटे के प्रति प्रेम स्पिरचुअल सेक्स है तो मां का बेटी के प्रति प्रेम क्या है? जाहिर है कि इस सिद्धांत के अनुसार मां का बेटी के प्रति प्रेम आध्यात्मिक समलैंगिकता (स्पिरचुअल लेस्बियनिटी) हुआ.

अतः स्पिरचुअल सेक्स में लिंग भेद नहीं होता, वहां समलैंगिक सेक्स भी उतना ही पवित्र है, जबकि समलैंगिकता की ओशो ने सर्वदा निंदा की.

24

इस स्पीच के अंत में ओशो कहता है- ''....ब्रह्मचर्य को जब लोग उपलब्ध हों और संभोग की यात्रा समाधि तक हो जाए, तब भी वे बच्चे चाह सकते हैं. लेकिन उन बच्चों का जन्म उत्पत्ति होगी, वह प्रोडक्ट होंगे, वह क्रिएशन होंगे, वह सृजन होंगे. सेक्स सिर्फ़ माध्यम होगा.

ब्रह्मचर्य अगर जगत में व्यापक हो जाए तो हम एक नयी ख़ोज करेंगे, जैसे पुरानी ख़ोज की है कि बच्चों से बचा जा सके और सेक्स का अनुभव पूरा हो जाए. आनेवाले जगत में इससे उल्टा प्रयोग हो सकता है, जब ब्रह्मचर्य इतना व्यापक होगा कि सेक्स से बचा जा सके और बच्चे हो जाएं....''

ओशो के ही अनुसार ब्रह्मचर्य को प्राप्त होते ही सेक्स पूर्णतया विलीन हो जाता है. उसने एक प्रयोग बताया जिससे संभोग की अवधि यदि तीन घंटा कर दी जाए तो जीवन भर सेक्स की इच्छा उत्पन्न नहीं होगी और वहां से ब्रह्मचर्य शुरू होगा.

ब्रह्मचर्य में जब सेक्स की इच्छा समाप्त हो जाती है तो व्यक्ति बच्चा कैसे चाह सकता है? उसमें बच्चा पैदा करने की इच्छा ही क्यों उत्पन्न होगी? जो सांसारिकता से ऊपर उठकर आत्मदर्शन को प्राप्त हो चुका हो, जो परमानंद की स्थिति में हो तो वो सेक्स जैसे प्राथमिक बिंदु की ओर क्यों वापस लौटेगा, जिससे वो पूरी तरह मुक्त हो चुका है?

सेक्स एक स्वाभाविक जैविक क्रिया है, चाहे इसे माध्यम के रूप में करें

या बच्चे की चाह से बचते हुए सेक्स के अनुभव के लिए करें, क्या फ़र्क़ पड़ता है? बच्चे की चाह में सेक्स का केवल माध्यम के रूप में ब्रह्मचारी प्रयोग करेगा जबकि ब्रह्मचर्य को प्राप्त होने के बाद मनुष्य माध्यम के रूप में ही सही, पर सेक्स से मुक्त हो चुका होता है. ब्रह्मचारी व्यक्ति अपने स्वभाव, जिसे पाने के लिए उसने बड़े-बड़े आध्यात्मिक प्रयोग किए हैं तथा अब वह आनंदमय है, उसकी ख़ोज पूरी होने को है, के विपरीत भला संतान की चाह क्यों करेगा? संतान की चाह में अपने शाश्वत सत्य स्वभाव के विरुद्ध प्रयोग क्यों करेगा?

25

ओशो आगे कहता है- ''....सेक्स को सेक्स के रूप में नहीं बल्कि माध्यम के रूप में किया तो उत्पत्ति सृजनात्मक होगी. ब्रह्मचारी जन्म लेंगे. वो आज की दीन-हीन मानवता जैसी नहीं होगी....'' ऐसी कोई व्यवस्था प्रकृति में मौजूद नहीं है. यह प्रयोग, यह संकल्पना निराधार, अस्वाभाविक और अप्राकृतिक है. क्योंकि कोई भी प्रयोग चाहे वो वैज्ञानिक हो या आध्यात्मिक हो, सेक्स को मात्र माध्यम जैसी व्यवस्था में परिवर्तित नहीं कर सकता. सेक्स मात्र सेक्स है जिसकी एक स्वाभाविक प्राकृतिक व्यवस्था है. प्रयोग से सेक्स संबंधी अज्ञानताओं को तो दूर किया जा सकता है परंतु सेक्स के स्वभाव को कदापि नहीं बदला जा सकता. जीवों के मस्तिष्क में ऐसा कोई तत्व नहीं है जो प्रयोग से सक्रिय होकर सेक्स के स्वभाव को माध्यम मात्र बना दे.

ओशो का यह दावा एक निराधार तथा कोरी सुखद कल्पना को बेचने का प्रयास है, कमजोर आस्था के लोगों को बहकाने का एक जादुई मंत्र है. वास्तविकता के धरातल पर इस संकल्पना का कोई अस्तित्व नहीं है. सृष्टि की संरचना कुछ शाश्वत-सत्य अटल नियमों पर आधारित है. सारे प्रयोग और विज्ञान उन नियमों की सीमा में ही कार्य करते हैं. हमारा सीमित ज्ञान प्रत्येक क्षण हमें परमात्मा को प्राप्त होने के लिए प्रेरित करता है. ओशो नियमों को तोड़ने की असाध्य धारणा देकर कहता है कि परमात्मा को प्राप्त हो जाओ.

26

ओशो यदि पिछले जनम में सेक्स पर गहरा प्रयोग करने की वजह से इस जनम में जन्म से ही ब्रह्मचारी था तो इस अद्‌भुत प्रयोग को करके उसने अपने उत्तराधिकारी को जन्म देना चाहिए था जो उसी की तरह जन्मजात ब्रह्मचारी होता. ओशो ऐसा नहीं कर सका. कैसे करता बेचारा, ऐसा होना जब संभव ही नहीं था.

आध्यात्म जगत में आप जो कहते हैं वो कहने से पहले आपके चरित्र में उसका पाया जाना ज़रूरी है. यदि ऐसा नहीं है तो आप संन्यासी नहीं बल्कि आध्यात्म का व्यापार करने वाले ढोंगी हैं.

27

आगे एक स्थान पर ओशो कहता है- ''....जो काम इतने गहरे में है, वह परमात्मा से जुड़ा होगा.

और काम-वासना को अगर कोई धारा बना ले, ध्यान बना ले, समाधि बना ले.... तो उस व्यक्ति को काम-वासना से छुटकारा मिल जाएगा....''

काम-वासना से जब समाधि जुड़ी है, काम-वासना से जब परमात्मा की स्थिति जुड़ी है तब तो काम-वासना में ही लिप्त हो जाने से व्यक्ति को परमात्मा की स्थिति को प्राप्त हो जाना चाहिए. जहां क्षणिक रोशनी हो वहीं से संपूर्ण प्रकाश का मार्ग प्रशस्त होना चाहिए. क्षणिक प्रकाश जहां है उससे छुटकारा पाकर फिर संपूर्ण प्रकाश को पाने के लिए ध्यान क्यों जरूरी है? यह कौन-सा प्रयोग है? कौन सा विज्ञान है? परमात्मा की स्थिति को प्राप्त होने की व्यवस्था इतनी अस्वाभाविक क्यों है? काम वासना को ध्यान बनाने का, समाधि बनाने का प्रयोग क्या है? उपाय क्या है? काम वासना को अगर कोई ध्यान बना ले तो....? अर्थात्, ओशो एक संभावना बता रहा है, ऐसी संभावना जिसके घटित होने की कोई संभावना नहीं है. यदि ऐसी कोई संभावना या व्यवस्था प्रकृति में मौजूद होती तो सबसे पहले ओशो ऐसा करता. उसने तो पिछले जनम के प्रयोग के आधार पर स्वयं को जन्म से ब्रह्मचारी होने की घोषणा कर दी, जो और भी अस्वाभाविक घटना है.

28

यदि आप मानव-मन के विज्ञान, मनोविज्ञान का गूढ़ अध्यन करें तो आपको मनोवृत्तियों का अनुभव होगा. आप मनुष्यों के मन को पढ़ पाएंगे. मन बहुत चंचल और आनंद की चाह करनेवाला (प्लेजर सीकिंग) है. वह शरीर को तीव्रता से हमेशा भोग-विलास और काम की तरफ़ धकेलता रहता है. बार-बार धकेलकर भोग में लिप्त कर देना चाहता है ताकि मनुष्य भोग-विलास के जड़त्व को प्राप्त हो जाए. एक बार मानव-मन यदि जड़त्व को प्राप्त हो जाए तो चाहकर भी वो कभी सत्य की ख़ोज नहीं कर पाएगा. चेतना मन का ही सत्य रूप है. चेतना का चरित्र होता है- मन को सत्य बोध कराते रहना. मानव को जड़ता से बचाने के लिए वो मन की उन तीव्र प्रवृत्तियों को संतुलित रूप से संचालित करने का अनवरत प्रयास करता रहता है ताकि उसमें सत्य को प्राप्त होने की संभावना बनी रहे.

मन के विज्ञान की ये जो दो वृत्तियां हैं वो हमारी आत्मा की एक परीक्षा स्वरूप हैं. अतः जीवन का परम उद्देश्य हुआ मन का सत्य रूप अर्थात् चेतना का मन के दूसरे रूप, जो भोग-विलास और आसक्ति सम्मत है, पर पूरी तरह विजय पा लेना ताकि मनुष्य सफल मृत्यु को प्राप्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो सके.

पूरी तरह विजय पा लेने का मतलब दमन या स्वाभाविक अस्तित्व को नकारना नहीं बल्कि सत्य को प्राप्त होने के लिए मन की चंचलता, भोग-विलास और आसक्ति सम्मत प्रवृत्तियों को संतुलित व प्राकृतिक रूप से संचालित करते हुए परमात्मा से जुड़े रहना है.

मन की चंचलता जो भोग, संभोग, विलास और आसक्ति सम्मत है

वो भी स्वाभाविक है जिसका दमन संभव नहीं है और दमन सत्य को प्राप्त होने का कोई उपाय भी नहीं है. चूंकि इस स्वाभाविकता का परिणाम जड़त्व है इसलिए सत्य को प्राप्त होने के लिए इनका प्राकृतिक रूप से संतुलित संचालन अनिवार्य रूप से आवश्यक है.

मन के विज्ञान में चंचल मन जो भोग, संभोग और आसक्ति प्रधान है- इसी के साथ आध्यात्मिक चतुराई (स्पिरचुअल मैनिपुलेशन) से भूतपूर्व ओशो का दर्शन शुरू होता है.

जिस समय-काल में ओशो का आगमन हुआ था, संसार तब द्रुत गति से भौतिक विकास की ओर भाग रहा था. चारों तरफ़ पूंजीवाद (कैपिटलिज्म) का बोलबाला था. ओशो ने लोगों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया. उसने देखा कि संपूर्ण मानवता भौतिकवाद की ओर अंधाधुंध दौड़ रही है. लोग मन के जड़त्व की ओर तीव्र गति से अग्रसर हैं. इस समय लोगों को सत्य का कड़वा लगना स्वाभाविक है. अतः ओशो ने भोग-संभोग प्रधान निराधार दर्शन का शुभारंभ कर दिया. उस समय-काल में लोगों की मनोवृत्ति ओशो के अप्राकृतिक दर्शन के अनुरूप थी, अतः लोगों का एक हुजूम ओशो के पीछे दौड़ पड़ा.

ओशो का पहला पासा था मन की तीव्रतम प्रवृत्ति सेक्स में आत्म-दर्शन की झलक को दिखाना. लोग इतने मटीरियलिस्टिक हो चुके थे कि अब उन्हें यौन स्वच्छंदता (सेक्सुअल फ्रीडम) की चाह थी. ऐसे में ओशो ने सेक्सुअल फ्रीडम का स्पिरचुअल लॉजिक देकर आग में घी डाल दिया.

मनोविज्ञान के इस खिलाड़ी के पहले पासे ने बहुत तेजी से लोगों को उसका भक्त बनाना शुरू कर दिया. ओशो ने सेक्सुअल फ्रीडम में आध्यात्म और प्रगति की झूठी झलक दिखा दी जो लोगों को एक मात्र सत्य प्रतीत होने लगा और ओशो रातों-रात भगवान ओशो बन गया.

अब ओशो ने शुरू किया दमन के नाम पर धर्मों को झूठा ठहराना. धर्म गुरुओं को तो उसने समाज का विलेन ही बना दिया.

भोग-संभोग प्रधान दर्शन के सम्मोहन में ओशो के अनुयायियों को ओशो की बातें परम सत्य लगने लगीं. असत्य को सेक्स में लपेटकर लोगों को परोसा जाए तो असत्य परम सत्य का क्षणिक आभास देने लग जाता है, जैसे कि संभोग में समाधि का क्षणिक आभास ओशो ने दिखाया था.

29

ओशोः ''....सेक्स उतना महत्वपूर्ण बिल्कुल नहीं है जितना कि हम समझ रहे हैं उसे.

लेकिन किसी भी व्यर्थ की बात को उठाना बंद कर दें तो वह सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगी....''

सेक्स महत्वपूर्ण भी नहीं है और सेक्स ही समाधि को प्राप्त होने का एक मात्र उपाय भी है.

अगर सेक्स व्यर्थ है तो व्यर्थ की प्रक्रिया में परमात्मा की झलक क्यों है?

जो व्यर्थ उपक्रम है उसमें परमात्मा का रहस्य है, समाधि की झलक है, यह ओशो का मूल-दर्शन है.

आध्यात्म के नाम पर ओशो के लगभग सारे प्रयोग प्रकृति के नियमों के विरुद्ध हैं इसलिए स्वाभाविक तौर पर (नेचुरली) असाध्य भी.

मनोवैज्ञानिक क्रीड़ा से सत्य को असत्य या असत्य को सत्य साबित नहीं किया जा सकता. पर हां, मटीरीयलिस्टिक ब्रेन्स को मैनिपुलेट करके लोगों को दूर से सुंदर प्रतीत होनेवाले असत्यमयी सत्य की सुंदर काली संभावना में हमेशा के लिए अवश्य धकेला जा सकता है. ऐसी संभावना जिसके घटित होने की किसी भी संभावना से प्रकृति इंकार करती हो, फिर भी मैनिपुलेटेड ब्रेन्स को लगे कि वह कुछ अति सुंदर है जिसके हम बहुत क़रीब हैं.

सत्य इतना जटिल नहीं हो सकता, सत्य सृष्टि के कण-कण में विराजमान सरलतम विषय है. सत्य को प्राप्त होना सहज और सरल होगा, न कि इस क़दर अप्राकृतिक.

30

सत्य न दमन में है और न मटीरीयलिज्म की एक्सट्रीम प्रैक्टिस में. सत्य है प्राकृतिक व संतुलित जीवन-यापन में. प्राकृतिक सीमाओं में जीवन-यापन करते हुए अपना प्रमुख लक्ष्य (सेंट्रल कन्सर्न) परमात्मा को रखने में है. यह सहज है, सरल है.

भोग-संभोग में लिप्त होने पर मनुष्य प्रकृति के नियमानुसार व्यसनी (एडिक्ट) होता है न कि मुक्त? व्यवसन (एडिक्शन) मृत्यु की ओर ले जाएगा न कि मुक्ति की ओर.

दमन और एडिक्शन दोनों व्यर्थ हैं. दमन कर यदि परमात्मा के पास पहुंच गये और परमात्मा ने पूछ लिया कि तुम्हारे माध्यम से मुझे तुम्हारे बीवी-बच्चों का पालन-पोषण करना था. तुम थे कि मेरे प्रेम में उन्हें उपेक्षित (इग्नोर) कर दिया. अब तू ही बता कि इनका अपराधी मैं हूं या तू?? यानी, दमन के बाद भी हमें लज्जित हो जाना पड़ेगा.

यदि मटीरियलिज्म की एक्स्ट्रीम प्रैक्टिस कर परमात्मा के पास पहुंच गये और उसने पूछ लिया कि पदार्थ मैंने तुझे जीवन-यापन की आसानी के लिए दिया था. वो भी तुम्हारे शरीर की तरह नश्वर थे पर तुम मुझे भूल कर पदार्थ जैसी नश्वर वस्तु में मुझे ढूंढने का ढोंग करते रहे. तब भी हमें परमात्मा के सामने शर्मिंदा होना पड़ जाएगा. अपनी हठधर्मिता पर पछताना पड़ जाएगा.

परमात्मा अब तीसरे व्यक्ति से पूछेगा- तूने पदार्थ को मात्र जीवन-यापन के लिए प्रयोग किया पर तेरा प्रमुख लक्ष्य (कन्सर्न) मैं था. तूने इच्छाओं का दमन भी नहीं किया. मुझे सेंट्रल कन्सर्न रखते हुए सब कुछ सम्यक रूप से किया. मुझे गर्व है कि तू मेरा सृजन है.

31

पड़ोसी यदि भूखा है तो जब तक पड़ोसी के आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए उसे खाना नहीं खिला लेते तब तक आप सो नहीं सकते.

यदि किसी मनुष्य का हृदय किसी मनुष्य के कारण दुखा या एक इंसान से दूसरे इंसान को कोई तकलीफ़ पहुंची तो जब तक अमुक व्यक्ति आपको क्षमा नहीं करता परमात्मा भी आपको क्षमा नहीं करेगा.

इतना सहज और सरल है सत्य, न कि उल्टे-सीधे लॉजिक्स देकर सत्य को ढूंढती मानवता को गुमराह कर देने में.

32

मनोविज्ञान का एक प्रयोग है जहां दो सिद्धांत आपस में टकराते हैं. प्रयोग यह है कि एक साल के बच्चे के सामने जलते हुए लाल कोयले का टुकड़ा रख दीजिए. वो अबोध बालक लाल कोयले के टुकड़े को पकड़ने के लिए उसकी ओर भागेगा. पहले सिद्धांत के अनुसार बच्चे द्वारा कोयले को पकड़ने से पहले ही उसे रोक दीजिए और दूसरे सिद्धांत के अनुसार बालक को छोड़ दीजिए, उसे कोयले को पकड़ने दीजिए. बच्चे का हाथ जल जाएगा और फिर वह भविष्य में जलती हुई वस्तु को कभी नहीं छुएगा.

इन दोनों सिद्धांतों में ओशो का प्रिय सिद्धांत दूसरा वाला है. फर्क सिर्फ इतना है कि ओशो हाथ के जलने को नये जीवन की उत्पत्ति मानता है और हाथ न जलने को वे पूर्वाग्रह से ग्रसित होना कहता है.

33

ओशो कहते हैं- ''....सेक्स जीवन का अद्‌भुत रहस्य है. वह जीवन की अद्‌भुत मिस्ट्री है. उससे कोई घबराने की, भागने की ज़रूरत नहीं है. जिस दिन हम इसे स्वीकार कर लेंगे, उस दिन इतनी बड़ी ऊर्जा मुक्त होगी भारत में कि हम न्यूटन पैदा कर सकेंगे, हम आइंस्टीन पैदा कर सकेंगे....''

ओशो भारतीय समाज को सेक्स से ग्रसित एक कुंठित समाज कहता है. इसी कुंठित समाज ने विवेकानंद, गांधी और ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को जन्म दिया, जो मैं नहीं समझता कि अपने-अपने क्षेत्र में न्यूटन या आइंस्टीन से कमतर हैं. न्यूटन के जन्म के समय तो पश्चिम का समाज भी हमारे जैसा ही था. खैर, मनुष्य यदि सेक्स को पशुता जितने खुलेपन से स्वीकार कर ले तो महान मनुष्यों की उत्पत्ति होगी. ओशो की यह अवधारणा एक निराधार अवधारणा है. असल में हर व्यक्ति में अथाह ऊर्जा होती है पर संभावित रूप (पोटेंशियल फॉर्म) में. एक तो संकट (क्राइसिस) में कुछ लोग महान बनकर उभरते हैं. उदाहरणतः भारत और चाइना में गरीबी, संसाधनों की कमी आदि संकटों (क्राइसिस) ने निरंतर ऐसे लोग दुनिया को दिये जो अपनी सम्भावित क्षमता (पोटेंशियल) का प्रयोग कर जीनियस कहलाये. आज भी भारत और चाइना के लोग पश्चिम के देशों की हर फील्ड के क्रीम लेयर में हैं. पश्चिम की मास कितनी जीनियस है यह हम सबको पता है. ओशो की अवधारणा के अनुसार तो पश्चिम में हर दूसरे व्यक्ति को आइंस्टीन होना चाहिए. पर ऐसा नहीं है. दूसरी वजह महान लोगों के उत्पन्न होने की है, जिसे विज्ञान की भाषा में परिवर्तन-करण (mutation) कहते हैं. कोई भी जीन्स के दो

लोगों के मिलने पर भ्रूण-विकास के समय एक जैविक परिवर्तन होता है जो बहुत Rare होता है, पर उस परिवर्तन के पश्चात एक ऐसे प्रोटीन या जीन्स वाला मनुष्य जन्म लेता है जो parents के जीन्स से बहुत एडवांस्ड जीन्स का होता है. माता-पिता के गुणों व उस मनुष्य के गुणों में जमीन-आसमान का अंतर होता है. यह घटना बहुत कम होती है- पर होती अवश्य है. और यह भारत जैसे कुंठित समाज में भी होती है और पश्चिम में भी होती है. सेक्स का खुलापन इसके लिए कोई अनिवार्य आवश्यकता नहीं है. मुंशी प्रेमचंद, कबीर, ग़ालिब आदि महान मनुष्य इसी प्रकार की प्राकृतिक रूप से घटित वैज्ञानिक घटना के उदाहरण हैं.

34

ओशो कहता है- ''.... जीवन के सभी सौन्दर्य अतिरेक है. सभी सौन्दर्य 'ओवर फ्लोइंग' हैं, ऊपर तक बह जाना है...''

''....महावीर स्वामी और बुद्ध राजाओं के बेटे हैं, कृष्ण और राम भी राजाओं के बेटे हैं. ये 'ओवर फ्लोइंग' है. ये फूल जो खिले हैं, किसी ग़रीब के घर में नहीं खिल सकते थे. कोई महावीर ग़रीब के घर में पैदा नहीं होगा. कोई बुद्ध भी ग़रीब के घर में पैदा नहीं होगा. कोई राम और कृष्ण भी नहीं.

गरीब के घर ये फूल नहीं खिल सकते. ग़रीब सिर्फ़ जी सकता है, उसका जीना इतना न्यूनतम है कि उससे फूल खिलने का कोई उपाय भी नहीं....''

ओशो की इस भाषा में नग्न पूंजीवाद और पाखंड (हिप्पोक्रेसी) की झलक है, जिससे मुझे घृणा है. रही बात अवतारों के अमीर के घरों में जन्म लेने की तो सभी सवा लाख अवतारों ने अमीर के घर जन्म लिया हो- ऐसा नहीं है. ज्यादातर अवतार अमीर क़बीलों में आये क्योंकि सबसे पहले सुधार की आवश्यकता अमीर घरानों में थी.

जहां तक बात है अतिरेक से फूल खिलने की तो प्रकृति के नियमानुसार अतिरेक पर या यूं कहें अति भोग के बाद फूल नहीं खिलते अपितु जीव बीमार होता है. जीव में वसा बढ़ जाए तो जीव बीमार हो जाता है. कार्बोहाइड्रेट्स का अतिरेक हो जाए तो जीव डायबिटिक हो जाता है. प्रोटीन का अतिरेक हो जाए तो जीव कैंसर ग्रस्त हो जाता है. सेक्स का अतिरेक हो जाए तो जीव मानसिक रूप से कमजोर हो जाता है. ओवर फ्लोइंग से खेतों में बाढ़ आ जाती है न कि फूल खिलते हैं.

मुंशी प्रेमचंद, एपीजे अब्दुल कलाम, कबीर- ये सब ग़रीब के आंगन में खिले हुए फूल हैं.

35

ओशो के अनुसार- ''.... परिवार-नियोजन का अर्थ इतना ही है कि पृथ्वी कितने लोगों को सुख दे सकती है. भोजन दे सकती है. उससे ज़्यादा लोगों को पृथ्वी पर खड़े करना, अपने हाथ से पृथ्वी को नरक बनाना है....''

स्पीच के इस हिस्से में ओशो परिवार-नियोजन को एक बहुत बड़ी धार्मिक घटना और क्रांति साबित करने का अप्राकृतिक प्रयास कर रहा है. असल में परिवार-नियोजन की जितनी भी कृत्रिम व्यवस्थाएं खोजी गयीं, वो जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण पाने का विकल्प (ऑल्टरनेटिव) मात्र हैं और यह कोई बहुत प्राकृतिक व्यवस्थाएं नहीं हैं. हां, दुनिया के प्रगतिशील देशों ने अपनी जनसंख्या को कंट्रोल में रखने के लिए एक ऑप्शन के रूप में ज़रूर इनका स्वागत किया. जबकि ये कोई प्राकृतिक और धार्मिक ख़ोज नहीं है, जिसमें ओशो को अद्भुत क्रांति और परिवर्तन का स्कोप दिखाई दे गया.

हक़ीक़त तो यह है कि जनसंख्या कभी बढ़ी ही नहीं थी. रही बात पृथ्वी के पोटेंशियल की और प्रकृति के पोटेंशियल की तो इनमें वर्तमान जनसंख्या से हजार गुना ज़्यादा जनसंख्या को पालने-पोसने की सामर्थ्य मौजूद है.

असल में धरती पर संसाधनों व जीवन-यापन की वस्तुओं के वितरण की व्यवस्था के जर्जर होने के कारण ग़रीबी और जनसंख्या इतनी बड़ी चुनौती (चैलेंज) बन गई. वितरण की व्यवस्था को सही करने की खोज जरूर एक क्रांतिकारी ख़ोज हो सकती थी.... एक धार्मिक घटना हो सकती थी. एक प्राकृतिक और धार्मिक क्रांति हो सकती थी, न कि कंडोम का

प्रयोग. यह तो मजबूरी की वजह से राहत पहुंचाने वाली एक साधारण खोज है. राष्ट्रवाद और पूंजीवाद (Nationalism and Capitalism) की वजह से, कूटनीतिक विदेशी नीतियों (Diplomatic foreign Policies) की वजह से सारे संसाधन और पैसा बहुत थोड़े से लोगों के हाथों में केंद्रित हो गये, जहां ओवरफ्लो की स्थिति है. और धरती के बाकी सारे भूखंड को गरीबी, दरिद्रता और जनसंख्या-वृद्धि जैसे चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जो प्राकृतिक रूप से कोई समस्या या चैलेंज हैं ही नहीं. अब चूंकि अधार्मिक और अप्राकृतिक उपक्रमों के कारण संसाधन और पैसा केवल 15% लोगों के पास केंद्रित हो गये, इसलिए विकासशील देशों में जनसंख्या एक समस्या बन कर खड़ी हो गयी. ओशो को राष्ट्रवाद तथा नग्न पूंजीवाद (Nationalism and nude Capitalism) इतना धार्मिक और क्रांतिकारी लगता है कि जनसंख्या की प्राकृतिक व्यवस्था को रोकना भी उसे धार्मिक घटना प्रतीत होती है.

जो लोग धर्म मटीरियलिज्म के अनुयायी हैं, कंडोम की खोज उन्हें एक धार्मिक और क्रांतिकारी घटना ही प्रतीत होगी.

चाइना ने जनसंख्या की प्रॉब्लम को एक चुनौती की तरह लिया और मात्र 15 सालों में इस समस्या से उभर कर वह मुख्य धारा में आ गया जबकि हम आज तक कंडोम्स के विश्लेषण में लगे हुए हैं. चाइना तो संसाधनों, आजीविका के साधनों व जनसंख्या के बीच सम्यक सामंजस्य स्थापित करके समस्या से उभर गया और अपने यहां पूंजीपतियों, राजनेताओं, नौकरशाहों (ब्यूरोक्रेट्स) आदि ने सारे साधन पर आधिपत्य जमा लिया. परिणामस्वरूप, जनसंख्या और गरीबी ने विकराल रूप धारण कर लिया. अब हमारे पास परिवार-नियोजन और कंडोम ही मात्र एक उपाय बचा. जिन 15% लोगों के पास साधन केंद्रित हो गये हैं उनका तो हम कुछ कर नहीं सकते इसलिए बेहतर है कंडोम को एक धार्मिक घटना सिद्ध कर दिया जाए.

हम कमजोर लोग चैलेंज तो स्वीकार कर नहीं सकते इसलिए हमारे सामने कंडोम ही एक मात्र शांतिपूर्ण उपाय रह गया है. बेशक जनसंख्या-विस्फोट एक बड़ा चैलेंज है जो थोड़े से इंसानों द्वारा पूरी मानवता के सामने Creat कर दिया गया है. हम इंसानों पर यह कोई प्रकृति ने नहीं थोपा है.

राष्ट्रवाद (Nationalism) और पूंजीवाद ने इंसानों की वृद्धि को समस्या बना रखा है.

36

ओशो- ''....क्योंकि, कल जो परमात्मा का काम था, जरूरी नहीं कि वह आज भी वही हो. युग बदलता है, परिस्थिति बदल जाती है तो काम भी बदल जाता है....''

परमात्मा सत्य है और सत्य की परिभाषा है- जो भूत, भविष्य और वर्तमान में एक-सा हो, अपरिवर्तनशील हो. दुनिया की अब तक की किसी माइथोलॉजी को सत्य की इस परिभाषा से कोई आपत्ति या इंकार नहीं है. अब जाहिर है, परमात्मा के कार्य ही धरती पर मात्र सत्य हैं, जो समय, काल व परिस्थितियों की वजह से परिवर्तित नहीं हो सकते. मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों की एक सीमा है, सोच पाने की एक सीमा है. अपनी उस सीमा में जब हम सत्य के गूढ़ रहस्य को नहीं समझ पाते तो प्रायः सांसारिक वस्तुओं अथवा सत्य-जैसी प्रतीत होने वाली बात को हम सत्य के विरुद्ध जाकर सत्य कह देते हैं.

कल जो परमात्मा का कार्य था वही आज भी होगा. अधिक-से-अधिक कार्य का भौतिक स्वरूप बदल सकता है, पर मूलतः कार्य वही होगा. इसलिए यह कहना कि परिस्थिति बदलने से कार्य बदल जाएगा, मूल रूप से ग़लत बात है.

37

हिप्पियों का गूढ़ ज्ञानी ओशो कहता है- ''....तो हिप्पियों का चौथा सूत्र है, चेतना का विस्तार, एक्सपेंशन ऑफ़ कॉन्शियसनेस!

वह यह कह रहा है कि हम अपनी चेतना को कैसे फैलाएं. तो चेतना फैलाने के लिए वह सब तरह का प्रयोग कर रहा है. गांजा, अफ़ीम, भांग, हशीश, एलएसडी, मेस्केलिन, मारीजुआना, योग-ध्यान वह यह सब कर रहा है कि चेतना कैसे फैले, संकुचित चेतना का विस्तार कैसे उपलब्ध हो जाए. तो वह एलएसडी, मेस्केलिन केमिकल ड्रग्स का भी उपयोग कर रहा है, जिनके द्वारा थोड़ी देर के लिए चित्त नए लोक में प्रवेश कर जाता है....''

इस कथन से पहले हिप्पियों का आध्यात्मिक परिचय देते हुए ओशो ने यहां तक कह दिया कि वाद'इज्म' ने मानवता को सबसे ज़्यादा हानि पहुंचाया है. हिप्पी लोग किसी वाद से नहीं हैं. हिप्पी सिर्फ़ वही करता है जो उसका मन कहता है. हिप्पी किसी धर्म, संस्कृति, परंपरा, किसी वाद से नहीं बंधा है. वो इन बेड़ियों से मुक्त है. इसलिए ओशो के निकट हिप्पी एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक क्रांति है.

असल में वाद, मानव जीवन से जुड़ी बात है- जहां मननशील जीवन है वहां दर्शन होगी. किसी दर्शन विशेष (पर्टिकुलर फ़िलॉसॅफ़ी) को लेकर जीवन की जो व्यवस्था बनती है वह एक वाद है. इस प्रकार दुनिया में अलग-अलग दर्शन पर आधारित अलग-अलग वाद हैं. कौन-सा वाद सही है और कौन-सा ग़लत, यह एक अलग बहस है.

हिप्पी होना सही में कोई वाद नहीं है, कोई दर्शन नहीं है, कोई संस्कृति नहीं है. असल में 2nd world war की त्रासदी के शान्त होने के बाद यूरोप के उदार समाज (लिबरल सोसायटी) से कुछ नौजवान लड़के-

लड़कियां निकले जिन्होंने अपने जीवन को पूरी तरह नशे में, ड्रग्स में, अफ़ीम में, नशे की और भी चीज़ों में ढकेल दिया. दुनिया जानती है कि नशे में लत (एडिक्शन) होती है. ड्रग्स का एडिक्ट होने के बाद इंसान को पानी का फ़ोबिया होता है, वो बालों व दाढ़ी को बढ़ने देते हैं. उन्हें किसी बात की सुध-बुध नहीं रहती. ऐसे लोग महीनों नहाते नहीं. बस किसी तरह इतना कमाते हैं कि जिससे नशा कर सकें. वे अक्सर पब या जुआ खेलने की जगहों पर पड़े रहते हैं. यहां तक कि वे एडिक्शन के इसर क़दर गुलाम हो जाते हैं कि नशे की ज़रूरत को पूरा करने के लिए क्राइम करने से लेकर भीख तक मांगने पर उतारू हो जाते हैं. वे कभी होश में होते ही नहीं कि सच या ज़िंदगी की किसी हक़ीक़त को जान सकें. बहुत कम आयु में वे लावारिस लाश में तब्दील हो जाते हैं. इन्हें यूरोप में हिप्पी कहते हैं, जिन्हें इंडिया में गड़दुल्ले कहते हैं. गड़दुल्लों, मेरा मतलब हिप्पियों में ओशो को बहुत बड़ी आध्यात्मिक संभावनाएं दिखाई देती हैं. ओशो के नज़दीक़ ये गड़दुल्ले किसी भी संस्कृति और धर्म से ज़्यादा ईश्वरीय हैं. ख़ैर, एक इंसान जब किसी बड़े नशे का आदी होता है तो धीरे-धीरे उस इंसान का शारीरिक और मानसिक ह्रास होना शुरू हो जाता है. उस एडिक्शन की गुलामी बहुत जल्द इंसान को शारीरिक और मानसिक रूप से एक दम ख़ोख़ला कर देती है. होश में आते ही वे अपने सामने एक प्रोग्रेसिव समाज को देखकर बेचैन हो उठते हैं और फिर से नशे की हालत में चले जाते हैं, जहां उनकी आत्मा उनसे कोई सवाल नहीं पूछ पाती. यह नशा उनकी आत्मा को मार देता है. असल में हिप्पी या गड़दुल्ले वे लोग हैं जो ज़िंदगी और ज़िंदगी की चुनौतियों से हार मान चुके होते हैं. वे इतने कमजोर लोग हैं जो जिंदगी का बहादुरी से सामना नहीं कर सकते. इसलिए वे ख़ुद को नशे के हवाले कर देते हैं. नशे की उस हालत में उनकी ख़ुद की चेतना (कॉन्शस) बाक़ी नहीं रहती और ओशो कहता है कि हिप्पी या गड़दुल्ले ऐसा इसलिए करते हैं ताकि वो अपनी कॉन्शसनेस का विस्तार कर सकें. जिस एडिक्शन से उनकी संकुचित कॉन्शस तक नहीं बचती, चेतना मर जाती है, आत्मा ख़त्म हो जाती है, उस एडिक्शन से

वो अपनी चेतना का विस्तार कर रहे हैं? नशे के उस गहरे प्रभाव में जो भी गड़दुल्लों को दिखाई देता है वो उनकी मरी हुई कॉन्शन्स् का भ्रम है, Illusion है, न कि चेतना का विस्तार.

हमारे शरीर में, मस्तिष्क में आवश्यक नशे की सामग्री प्राकृतिक रूप से मौजूद है. हम दवाइयां बनाने में नशे की चीज़ों- जैसे अफ़ीम, ड्रग्स इत्यादि का प्रयोग करते हैं. नशे की इन चीज़ों के संतुलित प्राकृतिक प्रयोग की व्यवस्था विभिन्न वादों में है. विज्ञान भी एक वाद है. विज्ञान में यह व्यवस्था है. नशे का अतिरेक कर विनाश (डिज़ास्टर) की ओर जाना कोई आध्यात्मिक क्रांति या ईश्वरीय घटना नहीं है.

और तो और, हिप्पियों का आध्यात्मीकरण करते हुए ओशो यहां तक कहता है कि कृष्ण जी सबसे बड़े हिप्पी थे. कृष्ण जी का धरती पर अवतार सत्य को स्थापित करने के लिए हुआ था, न कि नशे में डूबकर दुनिया से बेख़बर रहने के लिए.

ज़िंदगी से भागे, डरे-सहमे हिप्पी लोग ओशो को आध्यात्मिक वैज्ञानिक प्रतीत होते हैं.

बेशक सारी जैविक क्रियाओं में बायो-केमिकल चेन्जेज होते हैं. नशे में भी ऐसा होता है. पर अफ़ीम, ड्रग्स आदि बड़े नशे में मात्रा ज़्यादा होने पर वह रासायनिक क्रिया इंसान को एडिक्शन और कोशिकाओं की क्षति (सेल्स डैमेज़) की ओर ले जाती है न कि डिवाइन की ओर.

यदि आप मस्तिष्क की बीमारियों का अध्ययन करें तो पाएंगे कि एक पागल, जो मस्तिष्क में एक बड़े रासायनिक परिवर्तन (major chemical change) की वजह से होता है, पागल को लगता है कि छत उसके ऊपर गिर रही है, पर गिर नहीं रही होती है. पागल को लगता है कि कुछ लोग उसे मारने आ रहे हैं पर कोई उसे मारने नहीं आ रहा होता. ठीक उसी प्रकार ज़्यादा मात्रा में ड्रग्स लेने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हम किसी दूसरी दुनिया में जा रहे हैं, पर हक़ीक़त में ऐसा कुछ नहीं हो रहा होता. एक भ्रम (illusion) को दिव्य (divine) कहता है ओशो.

38

ओशो कहता है- ''....लेकिन गॉड फियरिंग धार्मिक कैसे हो सकता है? गॉड लविंग, परमात्मा को प्रेम करनेवाला धार्मिक हो सकता है. ईश्वर से डरनेवाला कैसे धार्मिक हो सकता है....?''

वैसे यह बहुत पुरानी बहस है. भक्ति की अलग-अलग धाराओं में इस बहस को देखा जा सकता है.

असल में इंसान की ज़िंदगी में सब कुछ अधूरा है. इंसान हमेशा हर पल परमात्मा की अथाह शक्ति को देखता है.

अधूरेपन का एहसास और परमात्मा की अथाह शक्ति का एहसास जिसे ओशो भय कहता है, इन दोनों एहसासों की वजह से इंसान के हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम पैदा होता है, संपूर्ण समर्पण की भावना उत्पन्न हो जाती है. प्रकृति में इतना बड़ा लाइफ़ सपोर्ट सिस्टम ईश्वर ने हम जीवों को दिया है. इतनी चीजें परमात्मा ने हमें दी हैं, जिनका भोग कर जीवित रहते हैं जीव. अब परमात्मा के प्रति कृतज्ञता से जीव का मन भर उठता है और वह ईश्वर प्रेमी हो उठता है. मानव जाति (ह्यूमन रेस) की हिस्ट्री में जिन लोगों ने इन तीनों बातों को ठुकराया और अकारण या निराधार परमात्मा से प्रेम का दावा किया या परमात्मा के अस्तित्व पर सवाल उठाये, उन सबका क्या दशा हुआ, यह हम सभी जानते हैं.

परमात्मा के प्रति अमर प्रेम के इन कारणों को भय या भय के पर्यायवाची नेगेटिव शब्दों से परिभाषित करनेवाले लोग सबसे ज्यादा अधार्मिक लोग हैं. बाक़ी कारणों से उत्पन्न प्रेम पदार्थ की तरह नश्वर होता है, जो समय के साथ समाप्त हो जाता है. विद्रोह से उत्पन्न प्रेम, प्रेम नहीं प्रेम का निरंकुश भ्रम है.

आत्मा निःसंदेह परमात्मा का अभिन्न अंश है. ज़ाहिर है कि धरती पर आने से पहले आत्मा कुछ बातों को लेकर वचनबद्ध (committed) होगी. उसी वचनबद्धता (committment) को तो आत्मा यहां निभा रही है, जिसे ओशो अंकुश, भय आदि न जाने क्या क्या कहता है. धर्मगुरु और कोई नहीं बल्कि वो आत्माएं हैं जिन्हें commitments याद हैं और वो बाक़ी इंसानों, जो commitments भूल गये हैं, को इस बारे में याद दिलाते हैं. हो सकता है कुछ लोग धर्मगुरु होने का ढोंग करते हों, उन पर आप टिप्पणी या उनकी आलोचना कर सकते हैं पर हर धर्मगुरु ग़लत है, यह एक ग़लत धारणा है. लेकिन धर्मगुरु ने अंकुश लगा दिया, परमात्मा से डरा दिया, लोगों में भय पैदा कर दिया इसलिए सारे धर्मगुरु- मानवता के दुश्मन हैं. सारे commitments भूल कर पशु बन जाओ तो वो जीना है, वो प्रेम है, वो धर्म है, बाक़ी सब बकवास है. यह अवधारणा अतार्किक और निराधार है. अधूरेपन में एक हद तक स्वतंत्रता है. इसका सीधा-साधा मतलब है - स्वतंत्रता एक परीक्षा है न कि पशुता को प्राप्त होने की अनुमति. हमारा अधूरापन इस बात का प्रतीक है कि पूर्णत्व और पूर्ण स्वतंत्रता अभी बाक़ी है. इसलिए यहां की अधूरी स्वतंत्रता कोई पूर्णत्व नहीं दे सकती. अतः स्वतंत्रता का सम्यक प्रयोग करते हुए परमात्मा-प्रेम में लीन रहने पर मृत्यु के पश्चात हम पूर्णत्व को प्राप्त होंगे. यही तो वो commitment है जो हम commit करके एक सीमित समय के लिए यहां आये हैं.

एक लड़का तथा एक लड़की जब एक-दूसरे से प्यार करते हैं तो उनमें एक अनकही commitment होती है और वो यह कि जब तक हम रिलेशनशिप में हैं, दोनों में से कोई भी 'किसी' तीसरे के साथ नहीं सोएगा. इसे आप भय भी कह सकते हैं. ऐसा एक अनकहे भय के कारण ही होता है. लोगों को गुमराह करने के लिए ओशो जैसे लोग 'भय' शब्द पर ज़्यादा जोर दे देते हैं. जबकि असल में यह भय एक गहरा प्रेम है, एक लॉयल commitment है.

39

ओशो- ''....जो भी मनुष्य को मुक्त करने की चेष्टा करता है, आदमी अजीब पागल है, वह उसी को अपना बंधन बना लेता है. उसी को अपनी ज़ंज़ीर बना लेता है....''

किसी भी वाद या सिद्धांत का पुरजोर विरोध करते हुए ओशो यह भ्रामक स्टेटमेंट देता है.

महापुरुषों का तो मुझे नहीं पता, पर धरती पर जितने भी अवतार परमात्मा की ओर से मनुष्यों की ओर आये, वे मनुष्यों को मुक्त करने के लिए, मनुष्यों का मार्गदर्शन करने के लिए परमात्मा द्वारा नियुक्त (appointed) लोग थे. उनके मार्गदर्शन से मनुष्यों का बहुत बड़ा वर्ग हर युग में प्रभावित हुआ. उनके आध्यात्मिक चरित्र से मनुष्य प्रभावित हुए. चूंकि अवतारों का आना ईश्वरीय घटना थी इसलिए उनके मार्गदर्शन को स्वीकार करना एक स्वाभाविक घटना थी. ऐसे लोग जो अपनी निजी या परंपरागत बातों के विरोध से आहत थे, वे ओशो की तरह लोगों के बीच भ्रामक बातें रखना शुरू कर देते थे. असल में वे लोग बेड़ियों से बाहर नहीं आना चाहते थे. अतः वे लोगों के मन में संदेह पैदा कर उन्हें भ्रमित मानसिक अवस्था (confused mind state) देने लगे. मनुष्य एक मननशील जीव है इसलिए वाद, सिद्धांत अर्थात् सत्य का तर्क-वितर्क उसमें हर काल में पाया जाता था, आज भी पाया जाता है. अवतारों के मार्गदर्शन में वे सत्य तक पहुंचे भी. ओशो जैसे कुछ अहंकारी लोगों ने मनुष्यों को भ्रमित करना जारी रखा.

असल में अवतारों का आना एक ईश्वरीय घटना है. अतः उनका अनुसरण करना परतंत्रता कैसे हो गया? उन्होंने तो समय-समय पर आकर हमें अपनी विकृतियों से स्वतंत्र किया ताकि हमारा जीवन सत्य

मार्ग पर प्रशस्त हो सके. ओशो जैसे लोग इस स्वतंत्रता पर निरंकुश-निराधार तर्क (लॉजिक) देकर उसमें परतंत्रता का भ्रम पैदा (क्रिएट) कर देते हैं. ओशो जैसे लोग हर दौर में होते रहे हैं. उनका काम ही यह होता है कि ''सत्य मुझे भा नहीं रहा है. मेरे प्रभुत्व और अभिमान के विरुद्ध है. इसलिए मानवता को गुमराह कर दो ताकि मेरी झूठी प्रभुता बनी रहे, अन्यथा सत्य को सर्वोपरि मानकर गुमनामी में सत्यार्थी बन जीते रहना पड़ेगा'', जो ऐसे अहंकारी लोगों को कभी गंवारा नहीं था. इन्होंने वाद और सिद्धांत के सत्य स्वरूप पर भ्रामक सवाल उठाकर मानवता को द्वंद्व की स्थिति में ढकेल दिया, जिससे सत्य कहीं और चला गया. वाद और सिद्धांत वादों और सिद्धांतों के जंगल बन गये. परतंत्रता वास्तव में ओशो जैसे लोगों की भ्रामक बातों में है, न कि वाद-सिद्धांत या अवतारों के अनुसरण में.

जैसा कि मैंने पहले कहा है कि ओशो मनोविज्ञान के चितेरा था. उसने अवतारों से मिली स्वतंत्रता से सत्य की ओर प्रशस्त मानवता की, स्वतंत्रता की सीमाओं को 'परतंत्रता' क़रार दिया. कुछ दंत कथाओं के माध्यम से परतंत्रता का आभास भी दिला दिया. मानवता का एक बहुत बड़ा वर्ग दोहरी सोच (double mind) अर्थात भ्रमित मानसिक अवस्था (confused mind state) का शिकार हो गया. वह पूरी तरह से द्वंद्व में घिर गया और ओशो का प्रभुत्व सिद्ध हो गया. अहंकार-शून्यता की बात करने वाले व्यक्ति का यह अहंकार है.

बेशक जीवन तरल है, स्वभावतः सत्य है. समय की एक सीमा में स्वतंत्र है. इस जीवन से पहले एक काल-शून्यता (timelessness) थी और इस जीवन के बाद भी timelessness है. केवल इस जीवन काल (टाइम) में सीमित स्वतंत्रता ही सत्य है.

यहां पर timelessness स्वतंत्रता की बात करेंगे तो टाइम में सीमित स्वतंत्रता-परतंत्रता जैसी प्रतीत होगी. बस, ओशो ने यही किया. ओशो जैसे लोगों की वजह से सत्य गुमराह हो गया.

40

ओशो के अनुसार- ''....कभी परतंत्र चित्त को आनंद मिला है? कभी परतंत्रता में कुछ जाना गया है? परतंत्र व्यक्ति कभी भी किसी भी स्थिति में समय को, सौंदर्य को उपलब्ध हुआ है....''

ओशो कहता है कि पिंजड़े में बंद परिन्दे की तरह मानवता अलग-अलग वादों और सिद्धांतों रूपी पिंजड़ों में बंद है. वो उड़ना चाहती है. जब तक मानवता उड़ेगी नहीं परमात्मा को उपलब्ध नहीं होगी. असल में पिंजड़ा वो है जो सत्य के विरोध में मात्र अपने अहंकार को संतुष्ट करने के लिए ओशो जैसे लोगों ने मानवता को दिया. मेरा तात्पर्य भ्रम, द्वंद्व, स्वतंत्रता को परतंत्रता कह देना इत्यादि से है. सबसे बड़े पिंजड़े ये हैं. हर युग में किसी न किसी ने सत्य की बहस को, सत्य के तर्क को अपने शैतानी दिमाग से गुमराह किया है. 20वीं सदी में यह 'महान' कार्य ओशो ने कर दिया.

पंछी पिंजरे से बाहर आसमान में उड़ना चाहता है. उसकी प्रकृति के अनुसार उसे उड़ने ही देना चाहिए. किसी को भी पिंजरे में बंद करके रखने का कोई अधिकार नहीं है. यही बात मनुष्यों के साथ है. अवतार तो मात्र समय-समय पर उन्हें यह बताते रहे, तुम्हारी उड़ान थोड़ी भटक गयी है उसे करेक्ट कर लो... कुछ लोगों ने तुम्हें गुमराह कर दिया है.... इसलिए परमात्मा ने मुझे तुम्हारे बीच भेजा है. मेरी बातों को तुम पहले से ही जानते हो, बस अब उन्हें मान लो.'' परमात्मा केवल ऐसा चाहता है. इस ईश्वरीय व्यवस्था को ओशो परतंत्रता कहता है.

41

ओशो- ''....सब रास्ते छोड़ देना, उसके रास्ते पर खड़े हो जाने की विधि है.....''

विधि, वाद, सिद्धांत का खंडन करनेवाला ओशो अपने उपरोक्त कथन में एक विधि को ही बता रहा है. पूरा कथन अपने-आप में एक वाद है. ओशो का यह कथन एक सिद्धांत ही तो है. भले ही ग़लत हो, पर वो है तो एक सिद्धांत ही. वादों से मुक्ति भी वाद है.

42

ओशो- ''....क्रोध से लड़ें और मन क्रोध के पास ही खड़ा हो जाएगा, हिंसा से लड़ें और मन हिंसक हो जाएगा. मोह से लड़ें और मन मोहग्रस्त हो जाएगा. लोभ से लड़ें और मन लोभ में गिर जाएगा. धन से लड़ें और मन धन के प्रति ही पागल हो उठेगा. काम से लड़नेवाला मन, सेक्स से लड़ने वाला मन, सेक्स में चला जाएगा, जिससे लड़ेंगे, मन वही हो जाएगा....''.

ओशो के उपरोक्त कथन के अनसुार मन यदि परमात्मा से लड़े तो मन ईश्वरीय हो जाएगा. परमात्मा से लड़ने पर मन यदि ईश्वरीय हो उठता तो धरती के सारे अहंकारी, नास्तिक लोग सबसे बड़े आध्यात्मिक होते, जबकि ऐसा नहीं है.

असल में आत्मा इस जीवन में क्रोध, मोह, लोभ, धन, काम इत्यादि के बीच घिरी है. यह परमात्मा का विधान है... आत्मा की परीक्षा के लिए.

क्रोध, मोह, लोभ, काम इत्यादि मन को अपनी ओर तीव्रता से खींचते हैं. मरते दम तक पूरी तीव्रता से इनका यही प्रयास रहता है. इनका स्वभाव है आत्मा को जड़ कर देना, परमात्मा की परीक्षा में मनुष्य को विफल कर देना. अब स्वाभाविक रूप से मन इनके जड़त्व (inertia) में होता है.

सत्य के आभास से मानव-चेतना, आत्मा को जड़ता की तरफ़ जाने से रोकने के लिए क्रोध, मोह, काम आदि पर संयम पाने का प्रयास करती है. चूंकि मन इनके जड़त्व में है अतः इन्हें संयमित करने पर मन

बार-बार वापस उन्हीं की तरफ भागता है. यह जड़त्व का विज्ञान है. जड़त्व की स्वाभाविक प्रवृति है. अब अनवरत प्रयासरत करते रहने पर मन इन सब चीज़ों के साथ सम्यक-सामंजस्य स्थापित कर लेता है. मन संयम को प्राप्त होने लगता है. आत्मा जड़ होने से बच जाती है व हर समय जीवित रहकर जीवन रूपी परीक्षा को सफल कर लेती है.

इसी सरल व स्वाभाविक संयम के दर्शन को ओशो दमन, लड़ाई, विरोध, भय इत्यादि नकारात्मक शब्दों से परिभाषित कर लोगों को गुमराह करता है. असल में किसी भी प्रवृति का दमन तो संभव ही नहीं है. मात्र संयम संभव है और स्वाभाविक भी.

43

ओशो- ''....ज्ञात से अज्ञात की तरफ़ जाने का कोई भी मार्ग नहीं है सिवाय ज्ञात को छोड़ने के. जो भी हम जानते हैं वह ज्ञात है और जो जीवन है, अनजान है....''

यूं तो यह पूरा भाषण एक सम्मोहक शब्दावली, मनोवैज्ञानिक क्रीड़ा और दंत कथाओं के जादू के अतिरिक्त कुछ नहीं है.

ओशो उपरोक्त कथन में आगे कहता है- ''तमाम पूर्वाग्रहों, सिद्धांतों, वादों, दमन इत्यादि सबसे मुक्त होने का मात्र एक उपाय है और वो है जागरण.''

असल में जो ज्ञात है, जो हमारा द्वंद्व है, जो हमारा अंदरूनी संघर्ष (कॉन्फ्लिक्ट) है उसी से तो हमारा स्वयं का अनुभव जुड़ा है. हमारे अनुभवों से ही जागरण संभव है. हमारा यह ज्ञान कि अब तक हम ग़लत थे, वही तो हमारे अंदर जागरण का आभास पैदा करेगा. ऐसे में अज्ञात, जो परम सत्य है, की तरफ़ बिना ज्ञात के जाना भला कैसे संभव है?? जो कुछ हम जानते हैं, जागरण के लिए उसका द्वंद्व, उसका संघर्ष (कॉन्फ्लिक्ट) जरूरी है. ये द्वंद्व, ये कॉन्फलिक्ट्स ही तो जागृत कर ज्ञात से हमें दूर करेंगे?? अतः जो ज्ञात है वो सार्थक है, पर ओशो यहां अपने कथन में ज्ञात की सार्थकता को स्वीकार नहीं कर रहा है.

जिस ज्ञात में कोई द्वंद्व या कॉन्फलिक्ट नहीं है, चाहे वो ज्ञात कहीं से भी आता हो, पर वो ज्ञात ही स्वयं में जागरण है. जागरण के इस सत्य को ओशो नहीं मानता. मान लेगा तो गुमनाम हो जाएगा. गुमनामी को सहन कर पाने की शक्ति उसमें नहीं थी. उसे तो ज्ञात का चतुराईपूर्वक इस्तेमाल (मैनिप्यूलेट) कर प्रभुत्व को प्राप्त होना था और वो हुआ भी.

44

ओशो के अनुसार- ''....सब शास्त्र पराये हैं. कोई कृष्ण का है, कोई राम का, कोई बुद्ध का, कोई जीसस का, और कोई मोहम्मद का. जो उन्होंने कहा है, वह उनके लिए सत्य रहा होगा....''

मैंने पूर्व में भी एक जगह कहा है- सत्य केवल सत्य है... वो एक व्यक्ति के लिए कुछ और तथा दूसरे व्यक्ति के लिए कुछ और हो, ऐसा नहीं है. सत्य तो समय-काल, परिस्थितियों, व्यक्ति इत्यादि सब से परे है. वो प्रत्येक समय-काल यानी भूत, भविष्य, वर्तमान, सबमें एक जैसा है. कृष्ण का सत्य अलग है और बुद्ध का सत्य अलग है, ऐसा नहीं है. सत्य सबके साथ एक है. ओशो के उपरोक्त कथन में जिन लोगों का ज़िक्र है, उनमें जो-जो अवतार हैं उन्हें धरती पर भेजा ही गया था सत्य के प्रसार के लिए, सत्य को स्थापित करने के लिए. इसलिए उनका सत्य संपूर्ण मानवता के लिए सत्य था. बेशक उनका सत्य उनके लिए तो था ही क्योंकि वे सब भी मनुष्य थे. पर उनके आने के पीछे परमात्मा की इच्छा थी सत्य से भटके हुए मनुष्यों का मार्गदर्शन करना.

अलबत्ता, अपने अहंकार के चलते कुछ लोगों ने अवतारों के सत्य को चालाक़ी से तोड़-मरोड़कर (मैनिप्यूलेट कर) लोगों को गुमराह कर दिया, यह दुखद घटना मानव जाति के इतिहास में हमेशा घटती रही है. ओशो भी उन्हीं लोगों में से एक है. जबकि ओशो को चाहिए था कि उससे पहले जिन लोगों ने अवतारों के सत्य के साथ खिलवाड़ किया था, उनकी वह धज्जियां उड़ा देता क्योंकि ओशो सब धर्मों का जानकार था. पर उसने ऐसा नहीं किया, बल्कि उन लोगों से भी ज्यादा साहस दिखाकर धर्मों में नयी-नयी धाराएं पैदा करने की जगह सारे धर्मों की सार्थकता को ही नकार दिया.

45

ओशो- ''....सत्य किसी भी किताब में न है न हो सकता है. सत्य किसी शब्द में न है न हो सकता है....''

अवतारों के माध्यम से परमात्मा के जो संदेश आते हैं उन्हें पुस्तक का रूप दिया जाता है, ताकि वो संदेश यथारूप में (as it is) आनेवाली पीढ़ियों तक पहुंचाये जा सकें. अवतारों से जो शब्द स्फुटित होते हैं उन्हें सुरक्षित रूप से आनेवाली पीढ़ियों तक पहुंचाया जाता है. सत्य के विरोधी उन किताबों और शब्दों के साथ खिलवाड़ कर आनेवाली पीढ़ियों को गुमराह ज़रूर कर देते हैं. मनुष्य का बौद्धिक ज्ञान सीमित है. जिन लोगों ने अपने निजी ज्ञान को जीवन का आधार बनाया उनका क्या हश्र होता है, हम सभी जानते हैं. सत्य की हमारी यात्रा में अवतारों की दिव्य वाणी और उनके ऊपर आये परमात्मा के दिव्य संदेश अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं. वरना मनुष्य अपने सीमित बौद्धिक ज्ञान में छटपटा कर कुत्ते की मौत मर जाता है. अपरिवर्तित मौलिक पुस्तक और अपरिवर्तित मौलिक शब्द- दोनों सत्य हैं.

सत्य की ख़ोज में कुछ लोगों ने अपने निजी स्वार्थ व अहं के वशीभूत होकर धर्म में जो आडंबर व कृत्रिम कर्मकांड जोड़ दिये वो सब ज़रूर निंदनीय हैं. दुनिया का हर सत्यार्थी उनकी निंदा करता है. निःसंदेह वो घृणित हैं. पर अवतारों का मौलिक सिद्धांत या वाद सत्य हैं.

46

ओशो- ''.... इन तीनों ज़ंज़ीरों से मुक्त होने के लिए एक ही सूत्र है, वह सूत्र है- जागरण.... एक ही सूत्र है छोटा सा- 'जागो....''

धरती पर जितने भी अवतार आये वो सभी सोयी हुई और सत्य से भटकी मानवता के जागरण के लिए ही तो आये थे. उनके आने का ध्येय ही था सोई हुई मानवता को जागृत करना. ऐसे में अवतारों का मौलिक संदेश, मौलिक धर्म भला लोगों के लिए बेड़ियां कहां से हो गया? अवतारों के मौलिक संदेश को विकृत करने वाले लोगों ने ज़रूर बेड़ियां डालने की कोशिश की और वे काफ़ी हद तक इसमें क़ामयाब भी रहे. इन बेड़ियों का विरोध करने की बजाय माननीय रजनीश ने अवतारों के मौलिक संदेश अर्थात सत्य को ही 'बेड़ी' क़रार दिया. असल में ओशो भी अवतारों के मौलिक सत्य रूप का विरोधी है इसलिए लोगों को सत्य से भटका कर बेड़ियों में कुछ बेड़ियां उसने भी बढ़ा दी.

47

ओशो का कहना है- ''....जिस दिन जागरण पूर्ण होगा, उस दिन मृत्यु विलीन हो जाएगी, जैसे थी ही नहीं....''

मृत्यु तो जीवन की सत्य घटना है जो कभी विलीन नहीं होगी. मृत्यु इस जीवन रूपी परीक्षा का अंतिम चरण है, साथ ही यह एक जैविक घटना भी है. इसलिए मृत्यु का एहसास तो होगा, पर जागरण में वो सफलता की संतुष्टि के साथ घटित होगी. शरीर से आत्मा के निकलने का एहसास कभी विलीन नहीं हो सकता. उसके घटित होने का एहसास हमें हर हाल में होगा.

48

ओशो- ''....लेकिन किसी की कृपा से नहीं होगा यह, किसी के प्रसाद से, आशीर्वाद से नहीं होगा. अपने ही श्रम, अपने ही संयम, अपनी ही साधना से होगा....''

भाषण के अंत में ओशो की जबान पर दबा-दबा ही सही, आख़िरकार सच आ ही गया. उपरोक्त कथन में उसने संयम को मान ही लिया.

असल में सच्चे धर्मों की मौलिक सत्य-व्यवस्था में हमेशा से संयम की बात ही की गयी है. वो भी पूरे विश्वास के साथ. कहीं पर भी दमन की कोई बात नहीं की गई है. दमन अस्वाभाविक बात है. किसी अवतार ने मानवता से कभी दमन की बात नहीं कही. सबने संयम की ही बात की है. दमन की संस्कृति पूर्णतया कुछ अहंकारी एवं अधार्मिक लोगों द्वारा धर्म में जोड़ दी गई है. श्रम, संयम, साधना सच्चे धर्म की शाश्वत व अनिवार्य संस्कृति है. दमन के प्रति ओशो का विरोध बिल्कुल सही विरोध है. ओशो अवतारों के सत्य को तो मानते हैं पर उनके सत्य को मानवता का सत्य नहीं मानता. हर व्यक्ति का सत्य अलग है. ओशो ने एक तरफ़ दमन की बेड़ी से मानवता को मुक्त करने का सार्थक प्रयास किया तो दूसरी तरफ़ अवतारों के सत्य का तिरस्कार कर दमन से भी बड़ी एक बेड़ी मानवता के पैरों में डाल दी. सत्य को सत्य रूप में स्वीकार न करने का अहंकार, दमन से भी ज़्यादा घातक है. आत्मा, परमात्मा का अभिन्न अंश है. पर प्रत्येक आत्मा का सत्य (परमात्मा) अलग-अलग है. जो अवतारों का सत्य है, वो आत्माओं का सत्य नहीं है- ओशो का यह निरंकुश दर्शन मानवता के लिए एक बहुत बड़ी बेड़ी है.

49

ओशो- ''....हमारे सम्मुख जो विज्ञान है वो पदार्थ जगत का विज्ञान है और मेरा जो विज्ञान है वो इंसान के अन्तर-जगत का विज्ञान है, जो हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग है. जितने व्यक्ति हैं सबके अनुभव अलग-अलग हैं. एक का जानना, एक का विज्ञान, दूसरे का जानना, दूसरे का विज्ञान नहीं हो सकता....''

इसे मैं क्या कहूं, विज्ञान का दुर्भाग्य या ओशो का निराधार विज्ञान? पदार्थ जगत का जो विज्ञान है, वो सबके लिए एक जैसा है. न्यूटन का लॉ या आइन्सटाइन का $e=mc^2$ आदि सबके लिए हैं, क्योंकि ये प्रकृति के शाश्वत नियम थे पदार्थ जगत के, जिन्हें लोगों ने जाना. पर अंतर-जगत का विज्ञान सबके लिए अलग है. आध्यात्म जगत की प्रकृति इतनी अप्राकृतिक है कि ओशो को अंतर-जगत में कुछ नहीं मिला तो अन्तर-जगत के विज्ञान को प्रकृति के नियम (पदार्थ जगत) के विज्ञान के विपरीत कह दिया?? मान्यता प्राप्त व प्रूव्ड बातों का अपने कुतर्कों से विरोध करना मानो रजनीश का धर्म है. यदि अंतर-जगत में सबका अनुभव अलग है तो फिर वह विज्ञान कहां से हो गया?

ओशो के कम्यून्स में जितने लोग आते हैं सबके लिए उनके आध्यात्मिक प्रयोगों की विधियां एक से हैं पर सबका अनुभव अलग है. संभोग में समाधि की जो झलक है वो एक अद्‌भुत अनुभव है, जो सबके लिए समान है. ऐसे में हर व्यक्ति का अनुभव अलग कहां हुआ? अवतारों का अनुभव, अवतारों का सत्य- सबका अनुभव सबका सत्य क्यों नहीं है??

समापन

मेरी अगली पुस्तक ओशो पर ही है जिसका फिलहाल (tentative) शीर्षक मैंने "The Actual Testament" रखा है. दरअसल, कुछ चुनिंदा बड़े पत्रकारों ने ओशो के साथ इंटरव्यू किये थे, जिन्हें The Last Testament के नाम से जाना जाता है. इन्हीं इंटरव्यूज में से एक इंटरव्यू में एक पत्रकार ने उनसे परमात्मा के बारे (About God!) में पूछ लिया. उस पर ओशो ने अपनी धारणा को साबित करने के लिए यहां तक कह दिया- ''तुम्हारा ईश्वर बलात्कारी है (Your God is rapist). तुम्हारे God ने Virgin merry का बलात्कार किया और जीसस पैदा हुए. आगे देवी-देवताओं का जिक्र करते हुए ओशो ने यह भी कह दिया कि देवताओं ने देवियों का रेप किया. तुम्हारे भगवान रेपिस्ट हैं.'' सिर्फ ओशो की सेक्स और डांस थेरेपी में जो ज्ञान प्राप्ति (एन्लाइटनमेंट) है, वही परमात्मा है. इसके अतिरिक्त परमात्मा की हर संकल्पना झूठी और काल्पनिक है.

ओशो ने देवी-देवताओं की जो घृणित निंदा की है उस पर मैं वेदों का पुनः अध्ययन कर The Actual Testament में लिखूंगा, पर मदर मैरी पर उनके आरोप का खंडन मैं अवश्य अभी करना चाहूंगा. जिस परमात्मा ने इस अथाह तथा त्रुटिहीन सृष्टि (Zero defect universe) को क्रिएट कर दिया, जिसकी क्षमता को ओशो के लिए जानना तो दूर, उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता, उस परमात्मा के पास अपने अवतार जीसस को मदर मैरी की कोख में डालने के लिए क्या रेप ही एक ऑप्शन है?? वो तो virgin merry को बिना रेप किये भी मदर मैरी बना सकता है.

जब धरती पर ओशो जैसे लोग बढ़ने लगते हैं व लोग गुमराह होने लगते हैं तो परमात्मा ऐसा कुछ करता है जो उसके प्राकृतिक नियमों के

विपरीत हो और वह ऐसा करने में पूरी तरह सक्षम है.

ऐसा वो (परमात्मा) लोगों को यह एहसास दिलाने के लिए करता है- ''तुम भटक चुके हो... अब भी संभल जाओ... मैं सब कुछ देख रहा हूं.'' वास्तव में, मदर मैरी और जीसस जिस युग में आए थे उस काल में ओशो जैसे लोगों की संख्या बहुत बढ़ गई थी, जो प्रकृति का थोड़ा ज्ञान क्या पा गए कि पूरी ईश्वरीय व्यवस्था को ठुकराने लगे थे. उन्होंने लोगों को गुमराह कर दिया था. उनके भटकाव को एक मौक़ा देने के लिए परमात्मा ने अपने अवतार जीसस को virgin merry की कोख में भेजा. जीसस अवतार हैं और वर्जिन मैरी हमेशा से पवित्र थीं और हमेशा पवित्र रहेंगी. ओशो जैसे लोगों ने उस ईश्वरीय घटना को नहीं माना. और उन सबका क्या हश्र हुआ- यह आप इतिहास का मूल्यांकन कर जान सकते हैं.

ओशो के सारे प्रयोग अप्राकृतिक हैं, सेक्स में समाधि है- प्रयोग के बाद समाधि रह जाएगी सेक्स विलीन हो जाएगा. लेकिन virgin merry बिना सेक्स के मदर नहीं बन सकतीं??

पत्थर से पेड़-पौधे, पेड़-पौधों से कीड़े-मकोड़े और कीड़े-मकोड़े से इंसान जन्म ले सकता है (ओशो के अनुसार) पर Virgin Merry बिना सेक्स के mother merry नहीं बन सकतीं??

खैर, यह विषय मेरी अगली पुस्तक का है, जिसमें ओशो को मैं और अधिक विस्तार से उसके इस निरंकुश कथन का उत्तर दूंगा.

●●●

धन्यवाद